आर्यन प्रिन्टर्स

35, जेल रोड,जाहगीराबाद

भोपाल

राजीव दिवाकर - मो 9826287003

विनीता दिवाकर - 9406928226

आचार्य माणिक्यनंदीकृत

आचार्य माणिक्यनंदीकृत

परीक्षामुख

(अन्वयार्थ, अंग्रेजी मीनिंग, सूत्रार्थ एवं सरलार्थ सहित)

सरलार्थ

मुनि प्रणम्यसागर

प्रकाशक

आर्यन प्रिन्टर्स

35, जेल रोड, जाहगीराबाद

भोपाल

कृति	-	परीक्षामुख
कृतिकार	-	आचार्य माणिक्यनन्दी
सरलार्थ	-	मुनि श्री प्रणम्यसागर
अंग्रेजी अनुवाद	-	सरतचन्द्र घोशाल
शब्द संयोजन (टाइपिंग)	-	श्रीमति नूतन अनुराग जैन, लखनादौन
मुद्रक एवं प्रकाशक	-	आर्यन प्रिन्टर्स ,भोपाल
प्रतियाँ	-	1100
संस्करण	-	प्रथम
मूल्य	-	30/-
प्राप्तिस्थान	-	

1. आर्यन प्रिन्टर्स
35, जेल रोड,जाहगीराबाद
भोपाल - 9826287003

2. ब्र. कवितादीदी नागपुर (महाराष्ट्र)
मो.- 09422178180
09584315735

3. ब्र. राकेश जैन (सिद्धायतन)
भाग्योदय के पास
करीला रोड सागर (म.प्र.)
मो. 9993155667

4. ब्र. अनिल जैन
उदासीन आश्रम, 56 दुकान के पीछे
पलासिया इंदौर (म.प्र.)
मो. 9425478846

5. जिनेश शास्त्री
सचिव - वर्णी दिगम्बर जैन गुरुकुल
पिसनहारी मढ़िया, जबलपुर
फो. 0761 - 422991

भूमिका

प्रस्तुत 'परीक्षा मुख' ग्रन्थ एक उच्च कोटि का न्याय ग्रन्थ है। न्याय ग्रन्थों का पठन-पाठन आजकल बहुत विरल हो गया है। न्याय ग्रन्थों के नाम से ही अब लोग डरते हैं। यह विषय अत्यन्त नीरस और दुरूह होता है। न्याय ग्रन्थों को पढ़ना लोहे के चने चबाना है, ऐसा गुरु मुख से भी सुना है। इतना होते हुए भी इन ग्रन्थों का अध्ययन आज के समय में भी नितान्त आवश्यक है। इन ग्रन्थों के अध्ययन से सम्यदर्शन उत्पन्न होता है और उत्पन्न हुए सम्यक्त्व में दृढ़ता आती है, यह मेरी स्वयं की अनुभूति है।

इस मार्ग पर आने के बाद ब्रह्मचारी अवस्था से ही हम आचार्य स्वामी समन्तभद्र विरचित 'देवगम स्तोत्र' का पाठ करते थे। कहीं अर्थ समझ आता था, कहीं अर्थ समझ नहीं आता था, फिर भी ग्रन्थ का आम्नाय रूप पाठ करते रहने से ऐसा प्रतीति में आता था कि जिनमत के अलावा अन्य सभी मत एकान्त अभिप्राय को धारण करने वाले हैं और कुछ न कुछ समझ में कमी रखते हैं। आचार्य देव के वह श्लोक जिनमत के स्याद्वाद सिद्धान्त के प्रति बहुमान और रुचि बढ़ाते हैं। तत्त्व का श्रद्धान जब परीक्षा की कसौटी पर कस जाता है तो मन में शंकादि दोष उत्पन्न नहीं हो पाते हैं। जीवादि तत्त्वों का मजबूत श्रद्धान इन परीक्षा प्रधान ग्रन्थों को पढ़े बिना कदापि सम्भव नहीं है।

न्याय ग्रन्थों के बीज आचार्य कुन्द कुन्द देव के ग्रन्थों में और आचार्य उमास्वामी के तत्त्वार्थ सूत्र में सर्वप्रथम देखने में आते हैं। इन्हीं बीजभूत सिद्धान्तों को आचार्य समन्तभद्र देव ने अंकुरित किया और न्याय ग्रन्थों की नीव डाली। जैन न्याय की आधार शिला रखने का श्रेय आचार्य समन्तभद्र को जाता है। आचार्य अकलंक देव ने जिन सिद्धान्तों को और अधिक

पल्लवित किया। आचार्य विद्यानन्द महोदय ने अन्य मत के भरपूर खण्डन के साथ स्याद्वाद को महिमा मण्डित किया। इतना सब होते हुए भी जैन न्याय को सरलता से समझाने का एक महत्त्वपूर्ण प्रयास आचार्य माणिक्य नन्दिजी ने किया। यह न्याय ग्रन्थ का प्रथम सूत्र-ग्रन्थ हैं जो परीक्षा मुख के नाम से बहुत प्रसिद्ध हुआ। इस ग्रन्थ की उपयोगीता का अनुमान इस पर लिखे वृहत्काय टीका ग्रन्थों से किया जा सकता है। माणिक्यनन्दि महोदय ने आचार्य अकलंक देव के न्याय को इन सूत्रों के रूप में निबद्धकर जैन न्याय को सरलता से समझने योग्य बना दिया। इस अभिप्राय से परीक्षामुख ग्रन्थ न्याय अध्येताओं के लिए एक महान उपकार करता है।

छह अध्यायों में निबद्ध 208 सूत्रों में इतना अर्थ गाम्भीर्य है कि आचार्य प्रभाचन्द्र जी ने इस पर एक वृहत्काय टीका ग्रन्थ 'प्रमेय कमल मार्तण्ड' के नाम से रच दिया और अनन्तवीर्य देव ने 'प्रमेय रत्नमाला' नाम की सरल सुबोध टीका की।

इस ग्रन्थ की व्यवस्थित, सरल, सरस प्रमेय की उपादेयता ने श्वेताम्बर साधुओं का ध्यान भी खींचा और देवसूरी श्वेताम्बर आचार्य ने 11वीं शताब्दी में 'प्रमाण नय तत्त्वालंकार' स्याद्वाद रत्नाकर नाम की व्याख्या सहित इसी परीक्षामुख के सूत्रों को सामने रखकर रचा। इस तरह यह ग्रन्थ जैन न्याय को समझने के लिए और दुरुह सिद्धान्तों के ताले खोलने के लिए सर्वमान्य और सर्वग्राह्य कुंजी के रूप में प्रसिद्ध हो गया।

आचार्य माणिक्यनंदी के समय का अनुमान इतिहासकारों ने ईसा की सातवीं शताब्दी का अन्त और आठवी शताब्दी का प्रारम्भ माना है।

इस परीक्षामुख ग्रन्थ को गुरुमुख से पढ़ने और समझने का सौभाग्य हमें मिला। आचार्य महाराज ने इस ग्रन्थ में से आध्यात्मिक तत्त्व भी खोजे और सैद्धान्तिक तथ्य भी खोजे।

प्रारम्भ में जो सुना वह पूर्णतः ग्राह्य नहीं हो सका फिर भी गुरु की भावाभिव्यक्ति स्मृति पटल पर बनी रही। गुरु मुख से ही सुना था कि 'विद्या कालेन पच्यते'। विद्या समय से पचती है। इस ग्रन्थ का पाठ, चिन्तन चलता रहता था फिर भी ऐसा लगता था कि इस ग्रन्थ के बहुत से विषय हमारी बुद्धि गम्य नहीं है।

सिवनी में ग्रीष्म प्रवास के दौरान इस ग्रन्थ को पढ़ाने का उपक्रम हुआ। औरंगाबाद से आई डा. उज्जवला जैन आदि अन्यजन के आग्रह और विनय से इस ग्रन्थ का पढ़ाना प्रारम्भ किया तो जो विषय हमें अस्पष्ट लगते थे, वे सभी विषय स्वतः स्पष्ट होने लगे। इसी समय अन्य स्थानीय और बाहर के अध्येताओं ने भी इस ग्रन्थ को पढ़ा। इस ग्रन्थ को पढ़ाते समय जो पुस्तकें उपलब्ध हुईं उनमें प्रत्येक में कुछ न कुछ कमी प्रतिभासित हुई। ग्रन्थ के सूत्रों का स्पष्ट अर्थ, सूत्रों के लिखने का प्रयोजन, सूत्र गत शब्दावली का सरल अर्थ, उदाहरण से समझाने की पद्धति, अन्य उदाहरणों का प्रयोग अब तक प्रकाशित किसी भी ग्रन्थ में एक साथ उपलब्ध नहीं हुए। सभी पाठक उस ग्रीष्मऋतु में भी प्रथम बार अध्ययन करते हुए भी उत्साहित थे और उन्हीं की भावना रही कि एक ऐसा ग्रन्थ बनना चाहिए जो उपर्युक्त सभी कमियों को दूर करने वाला हो। उसी भावना का प्रतिफल है जो इस ग्रन्थ की समयोजना हुई।

अक्सर न्याय ग्रन्थ पढ़ते समय बड़े लम्बे-लम्बे वाक्यों की रचना होती है जिससे पाठक उलझ जाता है, इस बात को ध्यान में रखते हुए इस ग्रन्थ में एक, दो पंक्ति के वाक्य बनाए हैं जिन्हें पृथक् - पृथक् बिन्दुओं में समायोजित किया है। इस ग्रन्थ के सूत्रों का भाव सरलता से समझ में आए और सूत्र गत शब्दावली दुरुह न लगे, इस बात का ध्यान रखते हुए बिन्दु बनाए हैं। एक और बहुत अच्छी बात यह हुई कि उसी समय पं. श्रेयांस एवं अभिनन्दन दिवाकर जी ने मुझे एक ग्रन्थ लाकर दिया जो अंग्रेजी में था। इस ग्रन्थ को

*देखकर में आश्चर्य में पड़ गया कि यह 1940 ई0 का प्रकाशित है। इस ग्रन्थ में किसी किताब का अंग्रेजी अनुवाद मात्र नहीं है, अपितु अभी तक की उपलब्ध समस्त टीका ग्रन्थों का इसमें मुख्य सन्दर्भ सहित अंग्रेजी में विषय का स्पष्टीकरण है। जब जैन दर्शन को पढ़ने के पर्याप्त साधन नहीं थे उस समय में भी विद्वानों ने कैसे अध्ययन करके लिखा होगा ? इस परीक्षा मुख ग्रन्थ को अंग्रेजी में सरत चन्द्र घोशाल *** ने लिखा है। ज्ञात हुआ कि यह पश्चिम बंगाल के विद्वान थे। यह ग्रन्थ कलकत्ता से ही प्रकाशित हुआ है। इस ग्रन्थ से भी कई विषय स्पष्ट हुए इसलिए इसी ग्रन्थ से सूत्र मात्र का अंग्रेजी अनुवाद इस ग्रन्थ में ज्यों का त्यों समायोजित करके पाठकों के समान रखा है। न्याय के क्लिष्ट विषय को सरल अंग्रेजी में पढ़कर और अच्छा लगा। मनोहरलाल वर्णी के प्रवचनांश का भी इसमें उपयोग किया है।*

हो सकता है कि इस समायोजन के बाद भी पाठकों को सन्तुष्टि न हो क्योंकि ज्ञान का क्षयोपशम काल प्रभाव से निरन्तर हीनता की ओर है। 'प्रवचन भक्ति' से प्रेरित होकर जो कुछ भी आपके सामने है वह गुरु आशीष् और श्रुत भक्ति की देन है। मनीषी पुरुष इस प्रयास को और सरल बनायें, आगे और बढ़ायें जिससे भव्य जीव सदैव उपकृत होते रहें। इन्हीं भावनाओं के साथ गुरुचरणों में नमोऽस्तु....।

इत्यलम्

– मुनि प्रणम्य सागर

घंसौर (सिवनी) वर्षायोग 2011

:: विषयक्रम ::

क्र.	*विषय*	*सूत्र*	*पृष्ठ*
1.	*मंगलाचरण –*		3
**	*प्रथम परिच्छेद*		
1.	प्रमाण का स्वरूप	1	5
2.	ज्ञान का प्रमाणपना सिद्ध करने वाला सूत्र	2	6
3.	वह प्रमाण निश्चयात्मक ही होता है	3	8
4.	अपूर्वार्थ का समर्थन	4	9
5.	अपूर्वार्थ अन्य प्रकार का भी होता है	5	10
6.	स्वव्यवसाय का समर्थन	6	12
7.	स्वव्यवसाय का दृष्टान्त	7	13
8.	पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति	8	15
9.	कर्म के अलावा अन्य करणों की भी प्रतीति होती है	9	16
10.	कर्त्ता, कर्म आदि की प्रतीति के लिए शब्द के उच्चारण की आवश्यकता नहीं है	10	17
11.	शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि	11	18
12.	दृष्टान्त	12	20
13.	प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय	13	21
**	*द्वितीय परिच्छेद*		
14.	प्रमाण की संख्या का निर्णय	1	25
15.	प्रमाण के दो भेदों का स्पष्टीकरण	2	25
16.	प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण	3	26
17.	वैशद्य का लक्षण	4	26
18.	सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का लक्षण	5	28
19.	अर्थ और प्रकाश को ज्ञान का कारण मानते हैं उनका खण्डन	6	30
20.	पूर्व सूत्र में कही हुई बात को हेतु से सिद्ध करते है	7	31

क्र.	विषय	सूत्र	पृष्ठ
21.	ज्ञान पदार्थ से उत्पन्न नहीं होते हुए भी पदार्थ को कैसे जानता है	8	33
22.	पदार्थों को जानने की व्यवस्था का नियमन [नियम]	9	34
23.	मुख्य प्रत्यक्ष का स्वरूप	11	36
24.	मुख्य प्रत्यक्ष के विशद होने का कारण	12	38
* *	*तृतीय परिच्छेद*		
25.	परोक्ष का लक्षण	1	40
26.	परोक्ष के भेद व कारण	2	40
27.	स्मृति प्रमाण का लक्षण	3	41
28.	दृष्टान्त	4	42
29.	प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप व कारण	5	43
30.	प्रत्याभिज्ञानों के दृष्टान्त	6	45
31.	तर्क प्रमाण का स्वरूप व कारण	7	47
32.	व्याप्ति बनाने का ढंग और उसका उदाहरण	8,9	48
33.	अनुमान का लक्षण	10	50
34.	साधन का लक्षण	11	51
35.	अविनाभाव संबंध के भेद	12	52
36.	सहभाव अविनाभाव का विषय	13	53
37.	क्रमभाव अविनाभाव का विषय	14	53
38.	अविनाभाव ज्ञान किस प्रमाण से जाना जाता है	15	54
39.	साध्य का लक्षण	16	55
40.	असिद्ध विशेषण का प्रयोजन	17	56
41.	इष्ट तथा अबाधित विशेषणों का प्रयोजन	18	57
42.	साध्य का इष्ट विशेषण वादी की अपेक्षा	19	58
43.	वादी कौन होता है	20	59
44.	साध्य का विषय और क्या होता है	21	59
45.	उसी धर्मी का दूसरा नाम	22	61

क्र.	विषय	सूत्र	पृष्ठ
46.	धर्मी का प्रथम भेद	23	61
47.	धर्मी का दूसरा भेद	24	62
48.	विकल्पसिद्ध धर्मी का उदाहरण	25	62
49.	प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी में साध्य	26	63
50.	प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी के दृष्टान्त	27	64
51.	व्याप्ति काल में साध्य का नियम	28	65
52.	धर्मी को भी साध्य मानने पर होने वाला दोष	29	66
53.	'पक्ष प्रयोग' की आवश्यकता	30	67
54.	पक्ष की सिद्धि के लिए उदाहरण	31	68
55.	इसी अर्थ को समझाते हुए बौद्धों का उपहास	32	69
56.	अनुमान के दो ही अंग है	33	70
57.	उदाहरण अनुमान का अंग नहीं इसका प्रथम कारण एवं समाधान	34	70
58.	उदाहरण अनुमान का अंग नही इसका द्वितीय कारण एवं समाधान	35	72
59.	उदाहरण अनुमान का अंग नहीं इसी दूसरे विकल्प का पुनः समाधान	36	73
60.	उदाहरण अनुमान का अंग नहीं है इसका तृतीय कारण एवं समाधान	37	75
61.	केवल उदाहरण का प्रयोग करने में दोष	38	76
62.	उसी अर्थ का व्यतिरेक मुख से समर्थन	39	77
63.	उपनय और निगमन अनुमान के अंग नहीं	40	78
64.	समर्थन ही हेतु का श्रेष्ठ रूप	41	80
65.	उदाहरण, उपनय, निगमन का प्रयोग कथञ्चित् ठीक है।	42	81
66.	दृष्टान्त के भेद	43	82
67.	अन्वयदृष्टान्त का स्वरूप	44	83

क्र.	विषय	सूत्र	पृष्ठ
68.	व्यतिरेक दृष्टान्त का स्वरूप और लक्षण	45	84
69.	उपनय का लक्षण	46	85
70.	निगमन का लक्षण	47	86
71.	अनुमान के भेद	48	86
72.	अनुमान के दो भेदों के नाम	49	87
73.	स्वार्थ अनुमान का लक्षण	50	87
74.	परार्थ अनुमान का लक्षण	51	88
75.	वचन भी परार्थ अनुमान में कारण हैं	52	89
76.	हेतु के भेद	53	90
77.	उपलब्धि अनुपलब्धि हेतु के भेद	54	91
78.	अविरुद्ध उपलब्धि के भेद	55	91
79.	बौद्धों ने भी कारण रूप हेतु को माना है	56	92
80.	पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी भिन्न हैं	57	94
81.	कालव्यवधान के विषय में बौद्धों की शंका और उसका निराकरण	58	96
82.	कारण-कार्य का सम्बन्ध	59	98
83.	सहचारी हेतु भी भिन्न है	60	99
84.	1. अविरुद्ध व्याप्य उपलब्धि हेतु का उदाहरण एवं अनुमान के पाँच अवयवों का दिग्दर्शन	61	100
85.	2. अविरुद्धकार्योपलब्धि का उदाहरण	62	103
86.	3. अविरुद्ध कारण उपलब्धि हेतु का उदाहरण	63	104
87.	4. अविरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण	64	105
88.	5. अविरुद्ध उत्तरचर उपलब्धिरूप हेतु का उदाहरण	65	106
89.	6. अविरुद्ध सहचर उपलब्धि रूप हेतु का उदाहरण	66	107
90.	विरुद्ध उपलब्धि कैसे होती है -	67	109
91.	1. विरुद्ध व्याप्य उपलब्धि हेतु का उदाहरण-	68	109

क्र.	विषय	सूत्र	पृष्ठ
92.	2. विरुद्ध कार्य उपलब्धि का उदाहरण	69	110
93.	3. विरुद्ध कारण उपलब्धि का उदाहरण	70	111
94.	4. विरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण	71	112
95.	5. विरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण	72	114
96.	6. विरुद्ध सहचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण	73	115
97.	अविरुद्ध अनुपलब्धि के भेद -	74	116
98.	1. अविरुद्ध स्वभाव - अनुपलब्धि का उदाहरण	75	117
99.	2. अविरुद्ध व्यापक - अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण	76	118
100.	3. अविरुद्ध कार्य अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण	77	119
101.	4. अविरुद्ध कारण अनुपलब्धि का उदाहरण	78	120
102.	5. अविरुद्ध पूर्वचर अनुपलब्धि का उदाहरण	79	121
103.	6. अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि का उदाहरण	80	122
104.	7. अविरुद्ध सहचर अनुपलब्धि का उदाहरण	81	123
105.	विरुद्ध - अनुपलब्धि के भेद-	82	125
106.	1. विरुद्ध कार्य अनुपलब्धि का उदाहरण	83	126
107.	2. विरुद्ध कारण अनुपलब्धि का उदाहरण	84	127
108.	3. विरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि का उदाहरण	85	128
109.	परम्परा कारण भी इन्हीं हेतुओं में गर्भित है	86	128
110.	परम्परा कार्य का उदाहरण	87	129
111.	परम्परा कार्य का अविरुद्ध कार्य उपलब्धि में अन्तर्भाव	88	131
112.	दृष्टान्त देकर दूसरा हेतु और कहते है	89	132
113.	निष्णात पुरुष हेतु का प्रयोग कैसे करें -	90	133
114.	व्युत्पन्न प्रयोग के उदाहरण	91	134
115.	व्यप्ति ज्ञान में हेतु का प्रयोग ही उपयोगी है	92	136
116.	दृष्टान्त आदि के प्रयोग की आवश्यकता	93	138
117.	पक्ष का प्रयोग आवश्यक है	94	139

क्र. विषय	सूत्र	पृष्ठ
118.आगम प्रमाण का स्वरूप	95	140
119.शब्द से पदार्थ ज्ञान होता है	96	141
120.शब्द से ज्ञान होने का उदाहरण	97	142
** *चतुर्थ परिच्छेद*		
121.प्रमाण का विषय	1	145
122.अनेकान्तात्मक वस्तु के समर्थन में दो हेतु	2	145
123.सामान्य के भेद	3	147
124.तिर्यक् सामान्य का स्वरूप	4	148
125.ऊर्ध्वता सामान्य का स्वरूप	5	149
126.विशेष का प्रकरण	6	150
127.विशेष के भेद	7	150
128.पर्याय विशेष का स्वरूप	8	151
129.व्यतिरेक विशेष का स्वरूप	9	152
** पंचम परिच्छेद		
130.प्रमाण के फल का स्वरूप	1	154
131.प्रमाण के फल की विशेषता	2	156
132.प्रमाण का फल अभिन्न किस तरह होता है ?	3	157
** *षष्ठ परिच्छेद*		
133.तदाभास का लक्षण	1	159
134.प्रमाण स्वरूपाभास का लक्षण	2	160
135.स्वरूपाभास क्यों हैं, इसका हेतु-	3	162
136.स्वरूपाभास क्यों है, इसका दृष्टान्त	4	163
137.सन्निकर्ष की प्रमाणाभासता का दृष्टान्त	5	165
138.प्रत्यक्षाभास का कथन	6	166
139.परोक्षाभास का कथन	7	167
140.स्मरणाभास का कथन-	8	168
141.प्रत्यभिज्ञानाभास का कथन	9	170
142.तर्काभास का स्वरूप -	10	171
143.अनुमानाभास का अधिकार प्रारम्भ	11	172
144.पक्षाभास का स्वरूप	12	172
145.अनिष्ट पक्षाभास का उदाहरण	13	173
146.सिद्ध पक्षाभास का उदाहरण	14	174
147.बाधित पक्षाभास के भेद-	15	175
148.प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास का उदाहरण	16	176
149.अनुमान बाधित पक्षाभास	17	177
150.आगम बाधित पक्षाभास	18	178
151.लोकबाधित पक्षाभास	19	179
152.स्ववचन बाधित पक्षाभास	20	179
153.हेत्वाभास के भेद	21	181
154.असिद्ध हेत्वाभास का स्वरूप एवं भेद	22	182
155.असत्सत्ता हेत्वाभास का स्वरूप	23	183
156.पूर्वोक्त हेतु के हेत्वाभास का कारण	24	183
157.अनिश्चय हेत्वाभास का उदाहरण	25	184
158.पूर्वोक्तहेत्वाभास का कारण	26	185
159.पूर्वोक्त हेत्वाभास का अन्य मत का उदाहरण	27	186
160.पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण	28	187
161.विरुद्ध हेत्वाभास का स्वरूप एवं उदाहरण	29	188
162.अनैकान्तिक हेत्वाभास का स्वरूप	30	189
163.अनैकान्तिक हेत्वाभास का प्रथम भेद एवं उसका उदाहरण	31	190
164.पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण	32	191
165.शंकित वृत्ति हेत्वाभास का उदाहरण	33	192
166.पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण	34	193
167.अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का स्वरूप	35	194

क्र. विषय	सूत्र	पृष्ठ
168.सिद्ध साध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण	36	195
169.किञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण	37	196
170.बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण	38	196
171.निपुण पुरुषों को मात्र पक्ष दूषण की आवश्यकता है	39	197
172.दृष्टान्ताभास का स्वरूप	40	199
173.अन्वय दृष्टान्ताभास के उदाहरण	41	200
174.विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास	42	201
175.पूर्वोक्त दृष्टान्ताभास का कारण	43	203
176.व्यतिरेक दृष्टान्ताभास के उदाहरण	44	203
177.विपरीत व्यतिरेक नाम का दृष्टान्ताभास	45	206
178.बालप्रयोगाभास का स्वरूप	46	207
179.तीन अवयवों वाले बाल प्रयोगाभास का उदाहरण	47	208
180.चार अवयवों वाला प्रयोग भी बालप्रयोगाभास	48	209
181.अवयवों का विपरीत प्रयोग करने पर भी प्रयोगाभास	49	210
182.प्रयोगाभास का कारण	50	211
183.आगमाभास का स्वरूप	51	212
184.आगमाभास का उदाहरण	52	213
185.मोहाक्रान्त पुरुष का आगमाभास	53	214
186.आगमाभास का कारण	54	215
187.संख्याभास का स्वरूप	55	216
188.एक प्रत्यक्ष प्रमाण मानना संख्याभास क्यों है ?	56	217
189.अन्यमत में संख्याभास का कथन	57	218
190.संख्याभास का कारण	58	220
191.संख्याभास समझाने के लिए अन्य दर्शन का उदाहरण	59	221
192.प्रमाणों के भेद-भिन्नता का कारण	60	222
193.विषयाभास का कथन	61	223
194.विषयाभास का कारण	62	224

क्र. विषय	सूत्र	पृष्ठ
195.पदार्थ को स्वयं समर्थ मानने पर आने वाला दोष	63	226
196.पर की अपेक्षा रखने पर होने वाला दोष	64	226
197.पदार्थ को असमर्थ मानने पर आने वाला दोष	65	227
198.फलाभास का वर्णन	66	228
199.सर्वथा अभिन्न मानने पर फलाभास होने का कारण	67	229
200.व्यावृत्ति से भी प्रमाण और उसके फल की कल्पना का अभाव	68	230
201.उसी का दृष्टान्त	69	231
202.प्रमाण और फल में भेद वास्तविक है	70	232
203.सर्वथा भेद मानने पर दूषण	71	233
204.समवाय से फल मानने पर दूषण	72	234
205.इस ग्रन्थ को जानने का फल	73	234
206.अन्य संभावना	74	236
** अन्तिम भावना		

दुर्लभ गुरुमुख से वचन, दुर्लभ गुरु मुस्कान ।

दुर्लभ गुरु आशीष है, दुर्लभ गुरु से ज्ञान ।।

दुर्लभ से दुर्लभ रहा, गुरु गरिमा गुण गान ।

गुरु आज्ञा पूरण पले, दुर्लभ तम यह काम ।।

आचार्य माणिक्यनंदीकृत

परीक्षामुख

परीक्षा मुख शब्द का अर्थ :-

यह पुस्तक यथार्थ पदार्थों की परीक्षा कराने के लिए मुख अर्थात् दरवाजे के समान है । जैसे मकान में प्रवेश करने के लिए दरवाजा मूल कारण होता है उसी तरह तत्त्वों की परीक्षा करने में यह परीक्षा मुख पुस्तक मूल है। इसलिए इसे परीक्षा मुख कहते हैं। तात्पर्य यह है कि इसके पढ़े बिना न्याय के अन्य ग्रन्थों में प्रवेश नहीं हो सकता है।

❈ जिस शास्त्र के द्वारा वस्तु की वास्तविकता का निर्णय किया जाता है उसे न्याय शास्त्र कहते है।

❈ यह ग्रन्थ द्रव्यानुयोग का ग्रंथ है।

❈ इस ग्रन्थ को लिखने का क्या उद्देश्य है ?

1.सरलता से सभी को जैन न्याय का ज्ञान होना ।

2. जैन दर्शन के न्याय के साथ-साथ अन्य दर्शन की मान्यताओं का भी खण्डन करना।

3. न्याय के बड़े-बड़े ग्रन्थों में प्रवेश करने के लिए एक कुंजी बनाना।

❈ इस ग्रंथ में 6 परिच्छेद हैं एवं 208 सूत्र हैं।

1. पहले परिच्छेद में प्रमाण के स्वरूप का वर्णन है।
2. दूसरे परिच्छेद में प्रमाण की संख्या का वर्णन है।
3. तीसरे परिच्छेद में परोक्ष प्रमाण का वर्णन है।
4. चौथे परिच्छेद में प्रमाण के विषय का वर्णन है।
5. पाँचवे परिच्छेद में प्रमाण के फल का निर्णय किया है।
6. छटवे परिच्छेद में प्रमाणाभास के स्वरूप का वर्णन है।

ग्रन्थकार की प्रतिज्ञा और उद्देश्य –

मंगलाचरण–

प्रमाणादर्थसंसिद्धि, स्तदाभासाद्विपर्ययः ।
इति वक्ष्ये तयो र्लक्ष्म, सिद्धमल्पं लघीयसः ॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाणात्	=	प्रमाण से
अर्थ–	=	पदार्थ की
संसिद्धिः	=	सम्यक्सिद्धि होती है
तदाभासात्	=	उस प्रमाणाभास से
विपर्ययः	=	विपरीत सिद्धि होती है
इति	=	इस प्रकार
तयोः	=	उन दोनों के [प्रमाण और प्रमाणा भास के]
सिद्धम्	=	पूर्वाचार्यों से प्रसिद्ध
लक्ष्यम्	=	लक्षण को
अल्पम्	=	थोड़ा, संक्षिप्त
लघीयसः (द्वि.ब.)	=	अल्पबुद्धि शिष्यों को
वक्ष्ये	=	कहूँगा

Meaning:-

From Pramāṇa [Valid knowledge]. Knowables are rightly ascertained and from Pramāṇābhāsa [false knowledge], the opposite happens. For this reason; I

shall describe the definitions of these as laid down by authorities in a concise manner for the benefit of those who desire a short exposition (of this subject).

श्लोकार्थ :-

प्रमाण से अभीष्ट अर्थ की सम्यक् प्रकार से सिद्धि होती है। और प्रमाणाभास से इष्ट अर्थ की सिद्धि नहीं होती, इसलिए मैं प्रमाण और प्रमाणाभास का पूर्वाचार्य प्रसिद्ध संक्षिप्त लक्षण को लघुजनों अर्थात् मंदबुद्धि वालों के हितार्थ कहूँगा।

प्रमाण –

प्रमाण [प्र+मा+आण] प्र– उत्कृष्ट, मा–लक्ष्मी, आण – ध्वनि
उत्कृष्ट लक्ष्मी, उत्कृष्ट वाणी सहित अंतरंग एवं बहिरंग लक्ष्मी
मा च आणश्च माणौ, प्रकृष्टौ माणौ यस्य सः प्रमाणः

उत्कृष्ट लक्ष्मी और उत्कृष्ट वाणी सहित व्यक्ति अरिहंत भगवान ही हैं क्योंकि अनंत चतुष्टय रूप अंतरंग और समवसरणादि रूप बहिरंग लक्ष्मी अन्य हरिहरादिक के संभव नहीं है, तथा प्रत्यक्ष और अनुमान प्रमाण से निर्बाध दिव्यध्वनि भी अन्य के संभव नहीं है इस प्रकार यहाँ प्रमाण शब्द का अर्थ अरिहंत हुआ उनके असाधारण गुण दिखाना ही उनकी स्तुति रूप मंगल हुआ।

प्रमाणाभास = हरि–हरादिक देव आदि

❖ वही ज्ञान सच्चा है प्रमाण है जो अपने आपको जानता है और अन्य पदार्थों को भी जानता है अर्थात् जो अपने एवं पर पदार्थों के स्वरूप का निर्णय करता है वही सम्यक्ज्ञान/सच्चा ज्ञान है।

❖ जिसके द्वारा प्रकर्ष से अर्थात् संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय के व्यवच्छेद/निराकरण से वस्तु तत्त्व जाना जाए उसे प्रमाण कहते हैं।

प्रथम परिच्छेद

प्रमाण का स्वरूप

''स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्'' ॥1॥

अन्वयार्थ :-

स्व-	=	अपने आपके और
अपूर्वार्थ-	=	जिसे किसी अन्य प्रमाण से जाना नहीं है
व्यवसायात्मकम्	=	निश्चय करने वाले
ज्ञानम्	=	ज्ञान को
प्रमाणम्	=	प्रमाण कहा है।

Meanīṇg:-

Pramana is valid knowledge of itself and of things not proved before.

सूत्रार्थ :-

अपने आपके और अपूर्व पदार्थ के निश्चय करने वाले ज्ञान को प्रमाण कहते हैं।

❈ मिले हुए बहुत से पदार्थों में से किसी एक पदार्थ को जुदा करने वाले हेतु को **लक्षण** कहते हैं।

❈ लक्षण या स्वरूप एक ही बात है। इसे ही परिभाषा (**Definition**) कहते हैं।

❈ लक्षण को जाने बिना किसी भी पदार्थ का सही ज्ञान नहीं हो पाता है इसलिए इस सूत्र में प्रमाण का लक्षण बताया है।

❈ इस परिभाषा में दो ही बाते मुख्य रूप से बतायी गयी है (1) स्व का निश्चय करना (2) अपूर्वार्थ का निश्चय करना ।

❈ 'स्व' शब्द न्याय, सांख्य, मीमांसा और योग दर्शन का खंडन करने के लिए आया है ये सभी दर्शन यह मानते हैं कि पदार्थ के ज्ञान के समय स्वयं का ज्ञान नहीं होता है।

❈ अर्थ के पहले अपूर्व विशेषण गृहीतग्राही [ग्रहण को ही ग्रहण करने वाला] धारावाहिक ज्ञान का निराकरण करने के लिए आया है।

❈ 'अर्थ' शब्द उन मतों का निराकरण करने के लिए है आया है जो यह मानता है कि बाहरी पदार्थ नहीं है। विज्ञान अद्वैतवादी, पुरुष अद्वैतवादी शून्य एकान्तवादी और मायावादी पूरी ज्ञानमय सृष्टि को ब्रह्ममय, शून्यमय और मायामय मानते हैं।

❈ 'व्यवसाय' शब्द बुद्ध मत का निराकरण करने के लिए जो कि यह मानता है कि निर्विकल्प प्रत्यक्ष ही प्रमाण होता है।

❈ सूत्र में व्यवसायात्मक विशेषण बौद्धों द्वारा मान्य निर्विकल्प प्रत्यक्ष की प्रमाणता का निराकरण करने के लिए है अर्थात् जिस ज्ञान में विकल्प ही नहीं फिर वह संशय का निराकरण कैसे करेगा इसलिए जैनाचार्यों ने व्यवसायात्मक विशेषण दिया है।

❈ 'ज्ञान' शब्द नैयायिकों के सन्निकर्ष प्रमाण का खंडन करने के लिए आया है।

❈ जैनदर्शन के अनुसार मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यायज्ञान और केवलज्ञान प्रमाण है।

ज्ञान का प्रमाणपना सिद्ध करने वाला सूत्र

''हिताहितप्राप्तिपरिहारसमर्थं हि प्रमाणं ततो ज्ञानमेव तत्'' ॥2॥

अन्वयार्थ :-

हित-	=	सुख,
अहित-	=	दुःख की

प्राप्ति–	=	प्राप्ति और
परिहार–	=	निराकरण करने में
समर्थम्	=	समर्थ
हि	=	निश्चित ही
प्रमाणम्	=	प्रमाण है
ततः	=	इसलिए
तत्	=	वह
ज्ञानम्	=	ज्ञान
एव	=	ही है।

Meaning:-

Because pramāṇa enables acquiring beneficial things and leaving non-beneficial objects, this is nothing but knowledge.

सूत्रार्थ :–

सुख की प्राप्ति तथा दुःख को दूर करने में समर्थ प्रमाण होता है। इसलिए ज्ञान ही प्रमाण है।

❇ इन्द्रिय और पदार्थ के संबंध को सन्निकर्ष कहते है।

❇ वह सन्निकर्ष जड़/अचेतन होता है।

❇ नैयायिक मत वाले सन्निकर्ष को प्रमाण मानते हैं उनके मत के खंडन के लिए यह सूत्र दिया है।

❇ अचेतन जड़ के द्वारा सुख की प्राप्ति एवं दुःख का परिहार नहीं होता इसलिए सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता, लेकिन ज्ञान से सुख की प्राप्ति और दुःख का परिहार होता है इसलिए ज्ञान ही प्रमाण है।

वह प्रमाण निश्चयात्मक ही होता है

"तन्निश्चयात्मकं समारोपविरुद्धत्वादनुमानवत्" ॥3॥

अन्वयार्थ :-

तत्	=	वह (ज्ञान)
निश्चयात्मकम्	=	व्यवसायात्मक है
समारोप–	=	संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय [झूठा या मिथ्या ज्ञान]
विरुद्धत्वात्	=	विरोधी होने से
अनुमानवत्	=	अनुमान के समान।

Meaning:-

That [Viz. Pramāṇa] being opposed to samāropa [viz. fallacies] consists of definiteness like Anumāna [inference].

सूत्रार्थ :–

वह प्रमाण निश्चयात्मक अर्थात् स्व और पर का निश्चय करनेवाला होता है क्योंकि वह संशय, विपर्यय तथा अनध्यवसाय से रहित होता है जैसे अनुमान भी निश्चयात्मक एवं समारोप से रहित है।

❇ बौद्ध अनुमान को पदार्थों का निश्चय करने वाला मानते हैं और प्रत्यक्ष को निर्विकल्पक अर्थात् निश्चय रहित मानते हैं, परन्तु जैनों ने सब ही प्रमाण अपने तथा पर के निश्चय करने वाले माने हैं, बस यही दिखलाने को उन्हीं के द्वारा माने हुए अनुमान का दृष्टांत दिया है और सभी प्रमाणों को निश्चयात्मक सिद्ध कर दिया है।

❇ संशय, विपर्यय और अनध्यवसाय को समारोप कहते हैं।

❇ साधन [धुयें] से साध्य [अग्नि] के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

❇ दो तरफ ढलता हुआ निर्णय रहित ज्ञान को संशय कहते हैं। जैसे किसी को अंधेरे में यह ठूठ है या पुरुष है, यह निर्णय नहीं हो पाता।

❇ यथार्थ से विपरीत वस्तु का निश्चय कराने वाले ज्ञान को विपर्यय कहते हैं। इसी को विमोह कहते हैं।

❇ 'कुछ है' इस तरह का ज्ञान अनध्यवसाय कहलाता है क्योंकि इसमें किसी भी प्रकार का स्पष्ट विचार नहीं होता है जैसे- चलते हुए व्यक्ति को तृण स्पर्श का ज्ञान होना, इसी ज्ञान को विभ्रम भी कहते हैं।

अपूर्वार्थ का समर्थन

''अनिश्चितोऽपूर्वार्थः'' ॥4॥

अन्वयार्थ :-

अनिश्चितः	=	जिसका निश्चय न हो वह
अपूर्वार्थः	=	अपूर्वार्थ है।

Meaning:-

Apūrvārtha is that which has not been ascertained.

सूत्रार्थ :-

जिस पदार्थ का पहले कभी किसी सच्चे ज्ञान से निर्णय नहीं हुआ उसे अपूर्वार्थ कहते हैं।

❇ जो ज्ञान जाने हुए पदार्थ को जानता है वह प्रमाण नहीं होता क्योंकि उसने पदार्थ का निश्चय ही नहीं किया किन्तु निश्चित पदार्थ का ही निश्चय किया है इसलिए वह अपूर्वार्थ नहीं है।

❇ जिस वस्तु को पहले किसी प्रमाण द्वारा जाना जा चुका है उसको पुनः किसी ज्ञान के द्वारा जानना व्यर्थ है इसलिए प्रमाण उसी का निश्चय करता है जो अपूर्व पदार्थ होता है।

❇ आचार्य गुरुदेव ने जब परीक्षा मुख ब्रह्मचारी अवस्था में सिद्धवर कूट क्षेत्र पर 1997 में पढ़ाई थी उस समय पर एक चिन्तन दिया था 'सिद्ध भगवान का सुख और ज्ञान अपूर्व होता है। प्रतिसमय सिद्ध भगवान के आत्म द्रव्य से नई-नई पर्याय निकलती है इसी का नाम अपूर्वता है । इसलिए उनका सुख भी अपूर्व होता है'। उनका ज्ञान अनिश्चित भूत एवं भविष्य की पर्यायों को भी जानता है इसलिए उस केवलज्ञान में भी अपूर्वार्थ घटित हो जाता है।

अपूर्वार्थ अन्य प्रकार का भी होता है

''दृष्टोऽपि समारोपात्तादृक्'' ॥5॥

अन्वयार्थ :-

दृष्टः	=	अन्य प्रमाण से ज्ञात
अपि	=	भी
समारोपात्	=	समारोप होने पर
तादृक्	=	उसके समान [अपूवार्थ के समान हो जाता है।]

Meaning:-

Even an ascertained thing becomes so [i.e. unascertained] through samāropa [fallacies].

सूत्रार्थ :-

जो पदार्थ पहले किसी प्रमाण से निश्चित हो चुका है उसमें संशय आदि कोई भी एक झूठा ज्ञान हो जाय तो वह भी अपूर्वार्थ कहा जायेगा और उसको जाननेवाला ज्ञान भी प्रमाण स्वरूप ही होगा।

❇ प्रमाण के बाद निर्णय किये गये पदार्थ में भी संशय, विपर्यय, अनध्यवसाय हो जाने पर अपूर्वार्थ है।

❇ किसी ज्ञान के द्वारा विषय रूप से गृहीत भी वस्तु यदि धूमिल आकार हो

जाने से निर्णय न की जा सके अर्थात् उसके विषय में समारोप उत्पन्न हो गया है, तो वह भी अपूर्वार्थ है।

❖ देखी एवं जानी हुई या प्रमाणित हुई वस्तुओं में भी संशय आदि उत्पन्न हो जाता है। दृष्टांत –

संघश्री की कथा

मुण्डित वंश की परम्परा में राजा धनदत्त हुए जो सम्यग्दृष्टि थे। ग्राम, नगर, देशों में राजा ने जिनमन्दिर बनवाये और सामन्त आदि को श्रावक बनाया। उसी धान्यक नगर में किसी ने एक बुद्ध विहार बनवाया वहाँ बुद्ध श्री बौद्धभिक्षु रहता था। उसका शिष्य और बौद्ध धर्म का उपासक संघश्री था। उसकी पत्नी कमल श्री और पुत्री विमलमति थी। पुत्री धनराजा की महादेवी हुई। वह जिनधर्म में रुचि रखती थी। संघश्री राजा का मंत्री और राजश्वसुर हो गया। एक बार विमलमती, संघश्री, धनराज के साथ महल के ऊपर धर्म और मुनि की कथा कर रहे थे तथी अपराह्न में दो चारण मुनि आकाश में गमन करते दिखे। उठकर सम्मान कर उनको समीप बुलाया और उनकी वन्दना भक्ति आदि की। राजा के कहने से ज्येष्ठ मुनि ने संघश्री को तत्त्व की बात बतायी और संघश्री को श्रावक बना दिया। दोनों मुनिराज चले गए। राजा ने कहा संघश्री सुबह तुम सभा में चारण मुनि की यह कथा सभी को सुनाना। प्रभो! मैं सब कुछ ऐसा ही करूँगा, ऐसा कहकर वह बुद्धश्री का अभक्त हो गया और बुद्ध विहारिका में शाम को गया तो नमस्कार नहीं किया। बौद्ध भिक्षु ने पूछा प्रणाम क्यों नहीं करते ? उसने चारण मुनि का सारा वृत्तान्त कह सुनाया। हाहाकार करते हुए उसने यह सब झूठ कहा और एक कथा सुनायी। काशीदेश में वाराणसी नगरी के राजा उग्रसेन थे, रानी धनश्री थी। उनका पुरोहित सोमशर्मा था। उसकी पत्नी पद्मावती, पुत्री पद्मश्री थी, जो पिता की अतिप्रिय और कुमारी थी। सोमशर्मा परिव्राजक साधुओं का भक्त था, उसने मठ बनाया और बहुत से साधुओं

को भोजन देता। उनमें एक सुवर्णखुर नाम का परिव्राजक था जो रूपवान था, शास्त्रों का ज्ञाता था। कुमारी द्वारा तैयार भोजन उसने अच्छी तरह बैठकर किया और आकर उसके मठ में रूक गया। पद्मश्री ने भोजन करवाया तभी उसका संसर्ग हो जाने से वह उसे लेकर चला गया। पुरोहित ने ढूँढा बाद में राजा को कहा। राजा ने आदेश से कोतवाल उसे ढूँढकर ले आया। राजा ने धर्म पाठकों को पूछा इसका क्या किया जाय। उन्होंने कहा मार दो और भूमि पर गिरा दो। तब वह श्मशान में वृक्ष के सहारे लटकाकर मार दिया गया। रात्रि में गन्ध, पुष्प, पान आदि से युक्त होकर पद्मश्री ने उसका आलिंगन किया। यह सुनकर राज ने उसे जलवा दिया। तब भी पद्मश्री ने उसकी भस्म से आलिंगन किया। पुरोहित ने वह भस्म नदी के बीच भवर में फेंक दी। अब वह उस जल से सदा आलिंगन करती। जिस प्रकार से उस पद्मश्री को किंचित् भी सुख नहीं उसी प्रकार ये चारण आदि कुछ भी नहीं हैं, यह मात्र भ्रम है। उस राजा ने आपको इन्द्रजाल दिखाया है। वह इन्द्रजाली हैं, इसलिए तुम बुद्ध धर्म मत छोड़ो। बार–बार उसे मिथ्या बताकर वह मिथ्यात्व को प्राप्त हुआ और कहा सुबह तुम राजसभा में जाने पर भी मैंने इस प्रकार देखा, मत कहना। सुबह राजा ने सामन्त आदि को आकाश में चारण मुनि के आगमन की कथा सुनायी तथा पूछताछ करने के लिए राजा के आग्रह से संघश्री को बुलवाया। उससे पूछा तो कह दिया कि, मैंने तो नहीं देखा, ऐसा कहते ही उसकी दोनों आँखे जमीन पर गिर पड़ी। राजा ने कहा अभी भी सत्य कह दो, तब भी उसने कहा, मैंने नहीं देखा। ऐसा कहते हुए वह आसन से गिर पड़ा और वहीं भूमि में घुस गया। मरण कर नरक को प्राप्त हुआ और दीर्घ संसारी हुआ।

स्वव्यवसाय का समर्थन

''स्वोन्मुखतया प्रतिभासनं स्वस्य व्यवसायः'' ॥6॥

अन्वयार्थ :-

स्व-	=	अपने आपको
उन्मुखतया	=	जानने के अभिमुख होने से
प्रतिभासनम्	=	जो अनुभव होता है वह
स्वस्य	=	अपने आपका
व्यवसायः	=	निश्चय है ।

Meaning:-

The ascertainment of self is the illumination of it towards itself.

सूत्रार्थ :-

अपनी ओर अभिमुख होने से अर्थात् स्वानुभव से जो प्रतिभास [आत्मप्रतीति] होता है वह स्वव्यवसाय कहलाता है।

❖ अपने आपको जानने के अभिमुख होना स्वोन्मुख होना है।

❖ प्रतिभासन = प्रकाशन/प्रकाश करना अर्थात् जानना।

❖ अपने आत्मा की प्रतीति को प्रतिभास कहते हैं।

❖ अपने आपको जानना स्वव्यवसाय है।

❖ जिस समय पर ज्ञान पदार्थ को जानता है उसी समय पर वह स्वयं को भी जानता है इसलिए समय भेद नहीं होने से हम कहते हैं कि ज्ञान ने स्व का भी निश्चय कर लिया।

स्वव्यवसाय का दृष्टान्त

''अर्थस्येव तदुन्मुखतया'' ॥7॥

अन्वयार्थ :-

इव	=	जिस तरह
तत्	=	उस पदार्थ को
उन्मुखतया	=	जानने के अभिमुख होने से
अर्थस्य	=	अर्थ का व्यवसाय होता है

Meaning:-

It becomes its own object, like other objects.

सूत्रार्थ :-

जिस तरह अर्थ की ओर उन्मुख होने से पदार्थ का व्यवसाय होता है उसी तरह स्व की ओर उन्मुख होने से स्वव्यवसाय होता है।

❖ उदाहरण - जिस प्रकार घट [घड़ा] पट [कपड़ा] इत्यादि शब्दों का हमें ज्ञान होता है तब उस शब्द के विषयभूत उन-उन पदार्थों का ज्ञान भी हमें अवश्य होता है उसी प्रकार जब 'आत्मा' इस प्रकार जाता है तब आत्मा है, इसका भी ज्ञान अवश्य हो जाता है।

❖ पदार्थ के अभिमुख होकर उसे जानने को अर्थव्यवसाय कहते है।

❖ दृष्टान्त - जब कोई व्यक्ति दर्पण में अपना चेहरा देखता है तो वह दर्पण को और अपने मुख को एक साथ देखता है उसी तरह ज्ञान जब किसी वस्तु को जानता है तो उस वस्तु को और स्वयं को एक साथ जानता है। एक साथ जानते हुए भी कथन पद्धति में अलग-अलग कहा जाता है। जैसे वह दर्पण की ओर उन्मुख है। यह तो परोन्मुखता हुई और अपना चेहरा देख रहा है यह स्वोन्मुखता हुई।

पदार्थ को जानने के समय होने वाली प्रतीति

''घटमहमात्मना वेद्मि'' ॥8॥

अन्वयार्थ :-

अहम्	=	मैं
घटम्	=	घड़े को
आत्मना	=	अपने आपके द्वारा
वेद्मि	=	जानता हूँ

Meaning:-

I know the pitcher through myself.

सूत्रार्थ :-

मैं घड़े को अपने आपके द्वारा जानता हूँ।

❖ घड़े को मैं अपने द्वारा जानता हूँ इस प्रकार ज्ञान में (1)अहम् [मैं] (2) आत्मना [अपने आपके द्वारा] इन दो पदों के द्वारा स्व का निश्चय होता है।

❖ घटम् पद से पर पदार्थ का ज्ञान होता है और अहम् कहने से 'स्व' का निश्चय होता है अर्थात् मैं घट जानता हूँ, इस तरह इस उदाहरण में प्रमाण के द्वारा स्व और पर का निश्चय करने वाला ज्ञान होता है।

अहम्-मैं	=	कर्त्ता
आत्मना-अपने से	=	करण
घटम्-घड़ा को	=	कर्म
वेद्मि-जानता हूँ	=	क्रिया

❖ ज्ञान केवल पदार्थ को ही जानता है अपने आपको नहीं जानता है ऐसी मान्यता नैयायिक मत वालों की है इस मत के खण्डन के लिए यह सूत्र दिया है।

कर्म के अलावा अन्य करणों की भी प्रतीति होती है

''कर्मवत्कर्तृकरणक्रियाप्रतीतेः'' ॥9॥

अन्वयार्थ :-

कर्मवत्	=	कर्म के समान
कर्तृ-	=	कर्त्ता
करण-	=	करण और
क्रिया-	=	क्रिया का
प्रतीतेः	=	ज्ञान होने से।

Meaning:-

Because (in our knowledge) we have an understanding of the subject, an instrumental cause and the verb, in the same manner as the object.

सूत्रार्थ :-

कर्म की भांति कर्त्ता, करण और क्रिया की भी प्रतीति होती है जिसको 8 नं. सूत्र से जान लेना चाहिए।

❖ प्रमाण के द्वारा जैसे घट-पट आदि रूप कर्म का बोध होता है उस प्रकार ही कर्त्ता (मैं) करण का (अपने द्वारा) और क्रिया (जानता हूँ) का भी बोध होता है।

❖ कर्त्ता [**Subject**] कर्म [**object.**] करण [**Instrumental cause**] क्रिया [**verb**]

❖ आत्मा जानने वाला है इसलिए ज्ञायक है [**knower**] ज्ञान का विषय [**knowable**] ज्ञेय कहलाता है, यही **object** है। आत्मा ज्ञान के

द्वारा जानता है इसलिए ज्ञान [**knowledge**] करण [**Instrumental cause**] है। जानना मात्र क्रिया **[verb]** है।

❖ इसी को प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय और प्रमिति इन शब्दों से भी जाना जाता है।

प्रमाता	=	आत्मा
प्रमाण	=	ज्ञान
प्रमेय	=	जानने योग्य
प्रमिति	=	क्रिया या ज्ञान का फल

कर्त्ता, कर्म आदि की प्रतीति के लिए शब्द के उच्चारण की आवश्यकता नहीं है-

''शब्दानुच्चारणेऽपि स्वस्यानुभवनमर्थवत्'' ॥10॥

अन्वयार्थ :-

शब्द-	=	शब्द का
अनुच्चारणे	=	उच्चारण नहीं करने पर
अपि	=	भी
अर्थवत्	=	पदार्थ के समान
स्वस्य	=	अपने आपका
अनुभवनम्	=	अनुभवन होता है

Meaning:-

Just as in the case of objects, there is understanding of itself [the knowledge] without utterance of the word [signifying it].

सूत्रार्थ :-

शब्द का उच्चारण नहीं करने पर भी अपने आपका अनुभव होता है जैसे कि पदार्थ का अनुभव होता है।

❖यदि कोई यह समझे कि पूर्व सूत्रों में कहे हुए कर्त्ता, कर्म, करण आदि से ही वस्तु स्वरूप जाना जाता है तो यह वस्तु का स्वरूप शब्द मात्र ही हुआ वास्तविक नहीं हुआ इस जिज्ञासा का निराकरण करने के लिए यह सूत्र आया है।

❖ जब कोई व्यक्ति घट-पट आदि किसी बाह्य पदार्थ को देखता है तो जरूरी नहीं कि वह बोले कि मैं घट को देख रहा हूँ, मैं पट को देख रहा हूँ और वह बिना बोले ही घट-पट आदि को जान लेता है उसी तरह मैं स्वयं को जानता हूँ, या मैं जानता हूँ, इस प्रकार शब्द उच्चारण के बिना भी स्वयं का अनुभव करता है। इसलिए कहा गया है कि शब्द उच्चारण के बिना भी कर्त्ता, कर्म आदि की प्रतीति होती है। यह प्रतीति केवल शब्दों से कहने मात्र की नहीं अपितु वास्तविक है।

❖ जब न्यायाचार्य विद्वान पंडित दरबारीलाल कोठिया समाधि के लिए अंतिम समय में आचार्य श्री जी के पास नेमावर आये तब आचार्य श्री ने उन्हें यह सूत्र सुनाया इस सूत्र को सुनकर वह हंस पड़े और कहने लगे - ''हाँ महाराज स्वयं का अनुभव शब्द के बिना भी होता है।'' तब आचार्य महाराज ने कहा पंडितजी अब यह समय शब्द के बिना स्वयं के अनुभव करने का है। इस तरह यह सूत्र अध्यात्म से जोड़ने वाला है।

शब्दोच्चारण बिना भी स्वप्रतीति की पुष्टि

''को वा तत्प्रतिभासिनमर्थमध्यक्षमिच्छँस्तदेव तथा नेच्छेत्'' ॥11॥

अन्वयार्थ :-

कः	=	कौन
वा	=	लौकिक [परीक्षक] होगा जो

तत् प्रतिभासिनम्	=	उस प्रतिभासित हुए
अर्थम्	=	पदार्थ को
अध्यक्षम्	=	प्रत्यक्ष से
इच्छन्	=	मानता हुआ
तत्	=	स्वयं ज्ञान को
एव	=	ही
तथा	=	प्रत्यक्षपने से
न	=	नहीं
इच्छेत्	=	स्वीकार करे

Meaning:-

Who does not accept it (i.e. knowledge) to be of that manner (i.e. being the subject-matter of experience) when one admits that in Pratyakṣa the object is illumined by knowledge ?

सूत्रार्थ :-

ऐसा कौन पुरुष है जो ज्ञान से प्रतिभासित हुए पदार्थों को तो प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय माने परन्तु स्वयं ज्ञान को प्रत्यक्ष न माने।

❖ सभी मानेंगे कि वह ज्ञान जब दूसरों को प्रत्यक्ष करता है तो अपना भी करता होगा, यदि अपने को न जानता होता, तो दूसरे पदार्थों को भी न जान सकता, जैसे घट आदि स्वयं को नहीं जानते इसलिए वे दूसरों को भी नहीं जानते।

❖ ऐसे ही जिस ज्ञान के द्वारा पदार्थो को जान रहे हैं उस ज्ञान के स्पष्ट भान को कोई मना करे तो , यह बात कैसे ठीक बने ?

❖ एक कोई बाबूजी थे, तो वे अपने घर में सारी चीजें व्यवस्थित ढंग से रख रहे थे। घड़ी की जगह लिखा दिया घड़ी, कमीज की जगह कमीज, कोट की

जगह कोट लिख दिया, छाता की जगह छाता लिख दिया। जिस बिस्तर पर लेटे उस पर ''मैं'' लिख दिया कि यहाँ पर मैं पड़ा हूँ, सो गए, जब आँखें खुलीं तो झट सारी चीजों पर निगाह डाली। वह देखने लगा कि हमारी सारी चीजें जैसी की तैसी रखी हैं या नहीं। देखा तो सभी चीजें ज्यों की त्यों रखी थी। पर पलंग पर देखा तो वहाँ लिखा था ''मैं''। पलंग से बाहर खड़ा हुआ देख रहा है। इस पलंग पर ''मैं'' न दिखा तो पलंग को झटक कर निवाड़ को इधर-उधर खिसकाकर देखा पर उसका ''मैं'' न टपका। सोचा - आह! मेरा तो ''मैं'' गुम गया परेशान होकर अपने मित्र को पुकारने लगा। अरे मित्र! मेरा ''मैं'' गुम गया, अरे मित्र! मेरा ''मैं'' गुम गया। मित्र सोचता है कि आज बाबूजी यह क्या बक रहे हैं। यह तो कहते हैं कि ''मैं'' गुम गया। सो मित्र ने कहा अच्छा बाबूजी आप थके हुए हैं, सो जावो, आपका ''मैं'' आपको अभी मिल जाएगा। बाबूजी को विश्वास हो गया, पलंग पर लेटकर सो गये। कुछ देर बाद मित्र ने जगाया और कहा देखो बाबूजी आपका ''मैं'' मिला कि नहीं। जब बाबूजी जगे तो अपने आप पर हाथ फेरने लगे और कहने लगे - ओह! मिल गया मेरा ''मैं''।

तो जैसे ''मैं'' गुम गया, ''मैं'' गुम गया, ऐसा कोई बके तो पागलपन जैसी बात है इसी तरह कोई अपने ज्ञान स्वरूप को मना करे, मेरा ज्ञान ही नहीं है, मैं ज्ञान को जानता ही नहीं ऐसा जो बकता है वह पागल की बात है।

दृष्टान्त

''प्रदीपवत्'' ॥ 12 ॥

अन्वयार्थ :-

प्रदीप-	=	दीपक के
वत्	=	समान

Meaning:-

Like a lamp.

सूत्रार्थ :-

दीपक के समान।

❇ जैसे दीपक घट पट आदि दूसरे पदार्थों को प्रकाशित करता हुआ अपने आपको भी प्रकाशित करता है। वैसे ही ज्ञान, घट-पट आदि को जानता हुआ अपने आप को भी जानता है।

❇ ज्ञान स्वयं को जब जानता है तो वह स्वयं को कर्म बना लेता है और जब दूसरे को जानता है तब कर्त्ता बन जाता है, इस प्रकार ज्ञान स्वयं कर्त्ता भी है और कर्म भी है।

प्रमाण के प्रामाण्य का निर्णय

''तत्प्रामाण्यं स्वतः परतश्च'' ॥ 13 ॥

अन्वयार्थ :-

तत्	=	उस [प्रमाण] की
प्रामाण्यम्	=	प्रमाणता [सच्चाई, वास्तविकता]
स्वतः	=	अपने आप से
च	=	और
परतः	=	पर से है ।

Meaning:-

The validity of Pramāṇa rises from itself or through an other. [Pramāṇa].

सूत्रार्थ :-

प्रमाण की वह प्रमाणता अभ्यासदशा में अपने आप से और अनभ्यास दशा में पर से होती है।

❇ इस सूत्र में अभ्यास दशा से और अनभ्यास दशा से इस पद को जोड़कर

सूत्र का अर्थ ग्रहण करना चाहिए।

❇ जिन वाक्यों को जोड़कर सूत्र का पूरा अर्थ निकाला जाता है वह वाक्य उपस्कार कहलाता है। चूंकि यह सूत्र उपस्कार सहित है इसलिए इसे सोपस्कार सूत्र कहते हैं।

❇ उदाहरण - जब भगवान आदिनाथ मुनि दीक्षा के बाद आहार करने निकले तो उन्होंने अपने आप से [स्वतः प्रमाण से] आहार की विधि किसी श्रावक को नहीं बतायी वे चाहते थे कि स्वतः प्रमाणता अर्थात् स्वतः उत्पन्न हुए ज्ञान से श्रावक आहार दान दे। राजा श्रेयांस को बहुत दिनों के बाद वह विधि स्वतः प्रमाण से ज्ञात हुई क्योंकि उन्होंने कुछ जन्म पूर्व मुनिराज के लिए दान दिया था। यही अभ्यास दशा इस भव में स्वतः प्रमाण बन गयी। अन्य लोगों को राजा श्रेयांस को दान देते देखकर दान विधि का ज्ञान हुआ इसलिए अन्य लोगों के लिए परतः प्रामाण्य कहलाया। क्योंकि वह ज्ञान अनभ्यास दशा के कारण हुआ।

❇ परिचित दशा को अभ्यास दशा कहते है और अपरिचित को अनाभ्यास दशा। परिचित दशा में प्रमाण स्वयं हो जाता है, उसे किसी अनुमान या बाह्य कारणों की आवश्यकता नहीं होती है जैसे- हम अपने हाथ की हथेली देख रहे हैं। यह बात स्वतः स्वयं प्रमाणित है, उसी प्रकार से जब हम अपने गाँव में बहुत बार देखे हुए किसी तालाब को कभी देखते हैं तो वह भी स्वतः प्रमाणित है, लेकिन जब हम किसी अपरिचित स्थान पर हों और प्यासे हों उस समय पर हमें ज्ञान बाहरी कारणों से होता है। जैसे ठंडी हवा के आने से, पानी भरकर आते हुए व्यक्ति को देखने से, जो हम निकट में पानी है, इस बात का अनुमान लगाते हैं तो यह अनुमान ज्ञान भी प्रामाणिक है क्योंकि इससे पानी का निर्णय हो रहा है। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति मृग मरीचिका [मरुस्थल] में सूर्य की किरणों को पड़ता हुआ देखकर पानी का निर्णय करता है तो उसका वह ज्ञान प्रामाणिक नहीं हैं क्योंकि वहाँ वस्तुतः पानी का अभाव है। इस तरह वस्तु के निश्चय और अनिश्चय से ही प्रामाण्य एवं अप्रामाण्य का ज्ञान होता है।

❖ सूत्र में आये 'परतः' शब्द से दो अर्थ निकलते हैं।

1. बाह्य कारणों के मिलने से।

2. अनुमान प्रमाण से। अर्थात् अनभ्यास दशा में बाह्य कारणों से मिलने पर भी ज्ञान में प्रामाणिकता आती है और अनुमान ज्ञान से भी।

प्रथम परिच्छेद का सारांश

इस प्रथम परिच्छेद में प्रमाण के स्वरूप का वर्णन किया गया है। प्रथम सूत्र – ''स्वापूर्वार्थव्यवसायात्मकं ज्ञानं प्रमाणम्'' इस सूत्र में स्व, अपूर्वार्थ, व्यवसायात्मक, ज्ञान और प्रमाण ये 5 पद है इन्हीं पाँच पदों का खुलासा आगे के सूत्रों में किया गया है।

प्रमाण के निकट में पहले 'ज्ञान' पद आया है। अर्थात् ज्ञान ही प्रमाण है यह दूसरे सूत्र में दर्शाया है। उसके बाद 'पश्चातानुपूर्वी' से देखने पर 'व्यवसायात्मकम्' पद रखा है। इसको परिभाषित करते हुऐ तीसरा सूत्र लिखा गया है। उसके बाद अपूर्वार्थ शब्द आया है। इसको परिभाषित करते हुए चौथा एवं पाँचवा सूत्र आया है इसके बाद 'स्व' शब्द आया इसका अर्थ स्पष्ट करते हुए छटवे से लेकर बारहवे तक सूत्र है। तत्पश्चात् तेरहवे सूत्र में प्रमाण शब्द की सार्थकता एवं प्रामाणिकता को दर्शाया है।

परीक्षा मुख ग्रंथ का इस प्रथम अध्याय का पहला सूत्र बहुत अर्थ को अपने में समाहित किए हुए है। इस प्रथम पद को कई तरीके से संधि विच्छेद करके समझाया जा सकता है।

❖ अपूर्व शब्द को मध्य दीपक मानते हुए इसे 'स्व' के साथ भी जोड़ा जा सकता है क्योंकि स्व (आत्मा) भी एक अपूर्व पदार्थ है, जिसका निश्चय भी इसी प्रमाण ज्ञान से होता है।

❖ 'अर्थ' शब्द को भी स्व के साथ जोड़कर व्याख्यायित किया जा सकता है। अर्थ याने पदार्थ। इसलिए स्वार्थ याने आत्म पदार्थ को निश्चित करने वाला

ज्ञान।

❖ सूत्र में सर्वप्रथम 'स्व' विशेषण दिया है जो यह इंगित करता है कि अपना, अपने आत्मतत्त्व का निश्चय होने पर ही पर पदार्थ का निश्चय होता है इससे स्पष्ट होता है कि स्व व्यवसाय अर्थात् अपनी आत्मा का निश्चय करना ही मुख्य तथ्य है।

जैन आचार्यों ने ज्ञान को स्वपर प्रकाशी माना है मगर देखा जाय तो इसी सिद्धांत को इस प्रथम अध्याय में अन्य मतों का खंडन करते हुए प्रस्तुत किया गया है।

इन सभी सूत्रों में स्व और पर पदार्थों को जानने वाला ज्ञान है और वही प्रमाण है, मात्र इसी बात पर ग्रंथकार ने जोर दिया है।

जो लोग ज्ञान को 'स्व' प्रकाशी नहीं मानते वे आत्मज्ञ [आत्मा को जानने वाले] कैसे हो सकते हैं ? और जो एकांत रूप से ज्ञान को 'पर' प्रकाशी ही मानते हैं वे 'सर्वज्ञ' कैसे हो सकते हैं ? जैन दर्शन में आत्मा आत्मज्ञ भी है और सर्वज्ञ भी है। केवलज्ञानी अपने ज्ञान से 'स्व और पर' पदार्थों को एक साथ जानते एवं देखते रहते हैं। स्व को जानने की अपेक्षा से वे आत्मज्ञ हैं और पर पदार्थों को जानने की अपेक्षा से वे सर्वज्ञ हैं। ज्ञान की यह 'स्वपर प्रकाशता' किसी भी अन्य दर्शन में नहीं पायी जाती। इसी से स्पष्ट होता है कि सर्वज्ञ के द्वारा ही यह स्व और पर का निश्चय करने वाला ज्ञान होता है।

अथ द्वितीय परिच्छेदः

प्रमाण की संख्या का निर्णय

"तद्द्वेधा" ॥1॥

अन्वयार्थ :-

तत्	=	वह प्रमाण
द्वेधा	=	दो प्रकार का है

Meaning:-

This [Pramāṇa] is of two kinds.

सूत्रार्थ :-

उस प्रमाण के दो ही भेद हैं।

❖ प्रमाण के समस्त अन्य भेदों का अन्तर्भाव इन दो ही भेदों में हो जाता है।

प्रमाण के दो भेदों का स्पष्टीकरण

"प्रत्यक्षेतरभेदात्" ॥2॥

अन्वयार्थ :-

प्रत्यक्ष-	=	प्रत्यक्ष प्रमाण और
इतर-	=	परोक्ष प्रमाण के
भेदात्	=	भेद से

Meaning:-

As it is of two varieties, Pratyakṣa and another [viz. Parokṣa]

सूत्रार्थ :-

प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से प्रमाण दो प्रकार का है।

प्रत्यक्ष प्रमाण का लक्षण

"विशदं प्रत्यक्षम्" ॥3॥

अन्वयार्थ :-

विशदम्	=	स्पष्ट, निर्मल ज्ञान
प्रत्यक्षम्	=	प्रत्यक्ष है।

Meaning:-

[The knowledge] Which is clear is Pratyakṣa.

सूत्रार्थ :-

विशद अर्थात् निर्मल, स्पष्ट ज्ञान को प्रत्यक्ष कहते हैं।

❖ जब हम अग्नि का ज्ञान प्रत्यक्ष से करते हैं तो वह स्पष्ट ज्ञान है इसलिए वह विशद है और जब हमें कोई विश्वस्त व्यक्ति यह बताये कि "यहाँ पर अग्नि है" अथवा जब हम धुँआ देखकर अग्नि का अनुमान करते हैं तो वह दोनों प्रकार का ज्ञान स्पष्ट न होने से विशद नहीं कहलाता है।

वैशद्य का लक्षण

"प्रतीत्यन्तराव्यवधानेन विशेषवत्तया वा प्रतिभासनं वैशद्यम्" ॥4॥

अन्वयार्थ :-

प्रतीति-अन्तरा-	=	दूसरे ज्ञान के
अव्यवधानेन	=	व्यवधान से रहित
वा	=	और
विशेषवत्तया	=	विशेष पने से सहित

प्रतिभासनम् = प्रतिभास को

वैशद्यम् = विशदता कहा है।

Meaning:-

Clearness means illumination without any other intermediate knowledge or illumination in details.

सूत्रार्थ :-

दूसरे ज्ञान के अंतराल से रहित और पदार्थों के आकार वर्ण आदि की विशेषता से होने वाले प्रतिभास को वैशद्य कहते हैं।

❖ एक प्रतीति से भिन्न दूसरी प्रतीति को प्रतीत्यन्तर कहते हैं।

❖ ज्ञान को प्रतीति भी कहते हैं।

❖ यहाँ विशदता के लक्षण में दो शर्ते हैं।

1. दूसरे ज्ञान के व्यवधान से रहित, 2. विशेषता के साथ ज्ञान होना।

❖ पहले यह जान लें कि पाँच ज्ञानों में अन्तिम तीन ज्ञान तो प्रत्यक्ष ही हैं और उन अवाधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान में दोनों शर्तों की पूर्ति हो जाने से वैशद्य का लक्षण घटित हो जाता है।

❖ मात्र न्याय ग्रंथों में ही मतिज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है। सिद्धान्त में मति, श्रुत दोनों ज्ञान परोक्ष है।

❖ मतिज्ञान में विशदता का लक्षण घटित हो जाता है क्योंकि मतिज्ञान में किसी अन्य ज्ञान का व्यवधान भी नहीं होता है और वह इन्द्रिय से स्पष्टता के साथ जानता है।

❖ मतिज्ञान के अवग्रह, ईहा, अवाय आदि भेदों में भी एक ज्ञान से दूसरे ज्ञान का व्यवधान नहीं होता है इसलिए अवग्रह आदि ज्ञान प्रत्यक्ष हैं।

❖ आप सोच सकते है कि ईहा ज्ञान से पूर्व अवग्रह ज्ञान का व्यवधान आएगा और अवाय ज्ञान से पहले अवग्रह, ईहा का व्यवधान आएगा फिर इनमें

विशदता कैसे हुई तो इसका उत्तर देते हैं कि मात्र ज्ञान का व्यवधान आने से विशदता में कमी नहीं आती किन्तु ज्ञान का विषयभूत पदार्थ बदल जाने से ज्ञान में व्यवधान आता है, जिससे विशदता नहीं रह जाती। जो पदार्थ अवग्रह से जाना है उसी को विशेष रूप से ईहा से जाना तो पदार्थ भिन्न नहीं होने से ज्ञान का व्यवधान नहीं माना जाएगा। इसलिए मतिज्ञान और उसके अवग्रह आदि भेद भी प्रत्यक्ष ज्ञान हैं क्योंकि इनमें विशदता है।

❖ श्रुतज्ञान मतिज्ञान पूर्वक होता है इसलिए मतिज्ञान का व्यवधान होने से श्रुत ज्ञान में विशदता नहीं रहती है इस कारण यह श्रुतज्ञान परोक्ष है। मतिज्ञान के ही अवान्तर भेदों (अवग्रह आदि में) तो विशदता बनी रहती है किन्तु श्रुतज्ञान में नहीं रहती है।

सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष का लक्षण

''इन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तं देशतः सांव्यवहारिकम्'' ॥5॥

अन्वयार्थ :-

इन्द्रिय- = इन्द्रिय और

अनिन्द्रिय- = मन के

निमित्तम् = निमित्त से

देशतः = एक देश [थोडा अंश] विशद

सांव्यवहारिकम् = सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है।

Meaning:-

[The Knowledge] which is partially clear and arises from Indriya [the senses] and Anindriya [the mind] is Sāṅvyavahārika pratyakṣa.

सूत्रार्थ :-

इन्द्रिय और मन के निमित्त से होने वाले एक देश विशद ज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

❖ समीचीन प्रवृत्ति-निवृत्ति रूप व्यवहार को सांव्यवहार कहते हैं एवं उसमें होने वाला प्रत्यक्ष सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष है। यह इन्द्रिय और अनिन्द्रिय निमित्तक है।

❖ सांव्यहारिक प्रत्यक्ष का दूसरा नाम मतिज्ञान है।

❖ इन्द्रियों की प्रधानता और मन की सहायता से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को इन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

❖ ज्ञानावरण और वीर्यान्तराय कर्म के विशिष्ट क्षयोपशम रूप विशुद्धि की अपेक्षा से सहित केवल मन से उत्पन्न होने वाले ज्ञान को अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष कहते हैं।

❖ सिद्धांत सूत्रों के अनुसार मतिज्ञान और श्रुतज्ञान को परोक्ष ज्ञान कहा जाता है जैसे कि तत्त्वार्थ सूत्र में ''आद्ये परोक्षम् '' कहा है किन्तु न्याय ग्रंथों में इस मतिज्ञान को सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष कहा जाता है। आचार्य अकलंक देव ने इस मतिज्ञान को ''सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष'' यह संज्ञा दी है।

❖ सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के इस लक्षण में 'मतिज्ञान' तो प्रत्यक्ष ज्ञान के रूप में सिद्ध हो जाता है किन्तु कथञ्चित् श्रुतज्ञान भी प्रत्यक्ष सिद्ध होता है।

❖ श्रुतज्ञान दो प्रकार का होता है, स्वार्थ एवं पदार्थ। इसमें स्वार्थ श्रुत ज्ञान को ईषत् परोक्ष कहा है। द्रव्यसंग्रह की टीका में कहा है - 'यत् पुनरभ्यन्तरे सुखदुःखविकल्परूपोऽहमनन्तज्ञानादिरूपोऽहमिति वा तदीषत् परोक्षम्।' जो अपने भीतर सुख, दुःख के विकल्प रूप है अथवा मैं अनन्तज्ञान आदि रूप हूँ, इस प्रकार का ज्ञान ईषत् (थोड़ा) परोक्ष है। इसी से स्वार्थ श्रुतज्ञान कथंचित् प्रत्यक्ष सिद्ध होता है।

❖ परार्थ श्रुतज्ञान शब्दात्मक होता है वह तो परोक्ष ही होता है।

❖ हाँ! निश्चय भावश्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष कहा है।

❖ मुनिराजों को ध्यान की अवस्था में शुद्धात्मा का संवेदन होता है। उस दशा में उनके इन्द्रिय और मन से उत्पन्न रागादि विकल्पों का अभाव होता है उसे भावश्रुतज्ञान कहते है।

❖ यह भाव श्रुत ज्ञान क्षयोपशम ज्ञान होकर भी प्रत्यक्ष है। (देखे द्रव्यसंग्रह की टीका)

अर्थ और प्रकाश को ज्ञान का कारण मानते हैं उनका खण्डन

''नार्थालोकौ कारणं परिच्छेद्यत्वात्तमोवत्'' ॥6॥

अन्वयार्थ :-

अर्थ-	=	पदार्थ और
आलोकौ	=	प्रकाश
कारणं	=	कारण
न	=	नहीं है
परिच्छेद्यत्वात्	=	ज्ञान के विषय होने से
तमोवत्	=	अंधकार के समान

Meaning:-

The object and light is not the instrument [of Pratykṣa knowledge] as the same are capable of being ascertained as in the case of darkness.

सूत्रार्थ:-

पदार्थ और प्रकाश ज्ञान का कारण नहीं है क्योंकि वे ज्ञान के विषय हैं। जैसे-अंधकार ।

❖ जानने योग्य वस्तु को ज्ञेय कहते हैं अर्थात् ज्ञान का विषय कहते हैं। उसी को यहाँ परिच्छेद्य कहा है।

❇ जैसे अंधकार ज्ञान का विषय है, ज्ञान का कारण नहीं उसी प्रकार पदार्थ और प्रकाश ज्ञान के विषय हैं कारण नहीं।

❇ यदि पदार्थों को ज्ञान का कारण माना जाएगा तो जो पदार्थ हमारे सामने है उसी का हमें ज्ञान होगा और जो पदार्थ अतीत में थे अथवा आगे होंगे उनका हमें ज्ञान नहीं हो सकेगा।

❇ इसी तरह प्रकाश को भी ज्ञान का कारण मानेंगे तो हमें अंधकार में कुछ भी ज्ञान नहीं होगा।

❇ यहाँ अंधकार है, ऐसा कहना भी अंधकार को जानना है।

पूर्व सूत्र में कही हुई बात को हेतु से सिद्ध करते है

"तदन्वयव्यतिरेकानुविधानाभावाच्च केशोण्डुकज्ञानवन्नक्तञ्चर-ज्ञानवच्च"॥7॥

अन्वयार्थ :-

तत्-	=	उन [पदार्थ और प्रकाश का]
अन्वय-	=	अन्वय
व्यतिरेक-	=	व्यतिरेक
अनुविधान-	=	के अनुरूप कार्य का
अभावात्	=	अभाव होने से
केश-	=	केशो में
उण्डुक-	=	मच्छर के
ज्ञानवत्	=	ज्ञान की तरह
च	=	और
नक्तंचर-	=	रात्रि को चलने वाले [उल्लु, चमगादड़] जीवों
ज्ञानवत्	=	के ज्ञान की तरह।

Meaning:-

That [is established] from universal affirmative and universal negative propositions like the knowledge of mosquito on a hair and like the knowledge of animals which see during the night.

सूत्रार्थ :-

अर्थ और आलोक [प्रकाश] ज्ञान के कारण नहीं हैं क्योंकि ज्ञान का अर्थ तथा प्रकाश के साथ अन्वय और व्यतिरेक संबंध नहीं है। जैसे केश में होनेवाले [उण्डुक के] मच्छर के ज्ञान के साथ तथा रात्रि में होने वाले उल्लू आदि के ज्ञान के साथ।

❇ कारण के होने पर कार्य का होना अन्वय कहलाता है।

❇ कारण के अभाव में कार्य के अभाव को व्यतिरेक कहते हैं।

❇ केश में होने वाले मच्छर के साथ अर्थ का अन्वय एवं व्यतिरेक संबंध नहीं पाया जाता। जैसे किसी व्यक्ति के सिर पर मच्छरों का समूह उड़ रहा था उसे देखकर किसी को यह भ्रम हो गया कि केशों का गुच्छा उड़ रहा है इस प्रकार के ज्ञान में मच्छरों के रहते हुए भी उसे मच्छरों का ज्ञान नहीं हुआ किन्तु केशों का ज्ञान हुआ। तो इस उदाहरण में कारण के अभाव में भी कार्य हो गया। कारण याने केशों का गुच्छा जो कि अभावात्मक है कार्य अर्थात् केशों का ज्ञान। अथवा किसी के सिर पर केश उड़ रहे थे उन्हें देखकर किसी को मच्छर का झुंड़ उड़ रहा हैं ऐसा भ्रम हो गया तो यहाँ पर कारण होने पर भी कार्य नहीं देखा गया। इस तरह अन्वय-व्याप्ति घटित नहीं हुई क्योंकि सिर के केश कारण और उससे होने वाला ज्ञान कार्य। इस प्रकार पदार्थ के साथ अन्वय-व्यतिरेक संबंध घटित नहीं होता इसलिए केशोण्डुक ज्ञान का उदाहरण दिया।

❇ प्रकाश के साथ भी ज्ञान का अन्वय-व्यतिरेक संबंध नहीं होता इसके लिए लिए रात्रि में चलने वाले नक्तञ्चर वत् यह उदाहरण दिया। दिन का प्रकाश

होते हुए भी उल्लू,चमगादड़ आदि को वस्तु का ज्ञान नहीं होता यह कारण के होने पर भी कार्य का न होना हुआ जिससे अन्वय संबंध घटित नहीं हुआ। और रात्रि में प्रकाश के अभाव में भी उन उल्लू चमगादड़ आदि को वस्तु का ज्ञान हो जाता है यहाँ पर कारण [प्रकाश] के अभाव में कार्य का सद्भाव देखा जा रहा है इसलिए व्यतिरेक संबंध का अभाव हुआ।

ज्ञान पदार्थ से उत्पन्न नहीं होते हुए भी पदार्थ को कैसे जानता है

''अतज्जन्यमपि तत्प्रकाशकं प्रदीपवत्'' ॥8॥

अन्वयार्थ :-

अतज्जन्यम्	=	अर्थ से नहीं उत्पन्न हुआ
अपि	=	भी
तत्	=	वह ज्ञान
प्रकाशकम्	=	प्रकाशक है
प्रदीपवत्	=	दीपक के समान ।

Meaning:-

Though it [i.e. knowledge] is not caused by it [i.e. the object], it [i.e. knowledge] illumines it [i.e. the object] like a lamp.

सूत्रार्थः-

अर्थ से उत्पन्न नहीं होकर के भी ज्ञान अर्थ का प्रकाशक होता है जैसे – दीपक।

❖ इस सूत्र में दो बातों पर विचार किया गया है।

1. ज्ञान पदार्थ से उत्पन्न नहीं होता ।

2. ज्ञान पदार्थ के आकार में परिणमन नहीं करता।

❖ ये दोनों मान्यताएँ बौद्ध की है इसी का समाधान इस सूत्र में किया गया है जैसे- दीपक न तो पदार्थ को उत्पन्न करता है और न पदार्थ के आकार रूप परिणमन करता है फिर भी वह घट-पट आदि पदार्थों को प्रकाशित करता है उसी तरह ज्ञान भी पदार्थों को जान लेता है।

पदार्थों को जानने की व्यवस्था का नियमन [नियम]

''स्वावरणक्षयोपशमलक्षणयोग्यतया हि प्रतिनियतमर्थं व्यवस्थापयति'' ॥9॥

अन्वयार्थ :-

स्वावरण-	=	अपने आवरण
क्षयोपशमलक्षण-	=	क्षयोपशम लक्षण वाली
योग्यतया	=	योग्यता से
हि	=	ही
प्रतिनियत अमर्थम्	=	प्रतिनियत पदार्थों के जानने की
व्यवस्थापयति	=	व्यवस्था होती है।

Meaning:-

Surely [Pratyakṣa knowledge] always illumines objects according to its power characterised by the mitigation of its hindrances.

सूत्रार्थ :-

अपने आवरण कर्म के क्षयोपशम लक्षण वाली योग्यता से प्रत्यक्ष प्रमाण प्रतिनियत पदार्थो के जानने की व्यवस्था करता है।

❖ स्वावरण - अपने ज्ञान के रोकने वाले आवरणों को स्वावरण कहते हैं।

❈ क्षय– उदय प्राप्त उन आवरण कर्मों के वर्तमान काल में उदयाभाव होने को क्षय कहते हैं।

❈ उपशम – अनुदय प्राप्त उन्हीं कर्मों के सत्ता में अवस्थित रहने को उपशम कहते है। क्षय और उपशम दोनों एक साथ होने पर क्षयोपशम होता है।

❈ प्रतिनियत व्यवस्था– इस ज्ञान का यह पदार्थ ही विषय है अन्य नहीं ऐसी व्यवस्था को प्रतिनियम व्यवस्था कहते है।

❈ जैसे प्रत्येक इन्द्रिय का विषय नियत होता है। चक्षु इन्द्रिय का विषय रूप के प्रति नियत है। कर्ण इन्द्रिय का विषय शब्द के प्रति नियत है। यही प्रतिनियत व्यवस्था कहलाती है।

❈ आत्मा में मतिज्ञान आदि कर्मों के अवग्रह आदि भेदों को लिए हुए असंख्यात आवरणी कर्म होते हैं। उनमें से जिस कर्म का क्षयोपशम [कुछ अंश प्रकट हो जाना] हो जाता है उसी के अनुरूप आत्मा को बाह्य पदार्थो का ज्ञान हो जाता है। यदि अवग्रह ज्ञान का क्षयोपशम है और ईहा आदि कर्मों का क्षयोपशम नहीं है तो उस पदार्थ संबंधी जिज्ञासा आदि उत्पन्न नहीं होती। जिस आत्मा में ईहा मतिज्ञान कर्म का क्षयोपशम अधिक होगा वह अधिक जिज्ञासा रखेगा। अवाय मतिज्ञान कर्म का क्षयोपशम होने पर उसको निर्णय होता है यदि इस कर्म का क्षयोपशम नहीं है तो उस ज्ञान में कभी भी निर्णय नहीं हो पाता। इसी तरह धारणा आदि के विषय में जानना चाहिए। पदार्थों को जानने की यह व्यवस्था अपने कर्मों से ही होती है।

जो ज्ञान का कारण है वह ज्ञान का विषय नहीं

''कारणस्य च परिच्छेद्यत्वे करणादिना व्यभिचारः'' ॥10॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और

कारणस्य	=	कारण को
परिच्छेद्यत्वे	=	ज्ञान का विषय मानने पर
करणादिना	=	इन्द्रियादि से
व्यभिचारः	=	असंगत दोष होता है।

Meaning:-

There will be non-application in the case of senses etc. if you accept the cause as the thing perceived.

सूत्रार्थ :-

कारण को परिच्छेद्य [ज्ञान का विषय] मानने पर करण [इन्द्रियों] से व्यभिचार दोष आ जाता है।

❈ जो पदार्थ ज्ञान का कारण होता है वह ही ज्ञान का विषय होता है यदि ऐसा माना जायेगा, तो इन्द्रियों के साथ व्यभिचार नाम का दोष हो जाएगा क्योंकि इन्द्रियाँ ज्ञान का कारण है विषय नहीं है अर्थात् इन्द्रियाँ अपने आपको नहीं जानती है।

❈ हेतु के रहने पर साध्य के न रहने को व्यभिचार दोष कहते हैं।

मुख्य प्रत्यक्ष का स्वरूप

''सामग्री-विशेष-विश्लेषिताखिलावरणमतीन्द्रिय-मशेषतो मुख्यम्'' ॥11॥

अन्वयार्थ :-

सामग्री–	=	द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावरूप
विशेष–	=	विशेषता से
विश्लेषिता–	=	दूर हो गये हैं

अखिल–	=	सम्पूर्ण
आवरणम्	=	आवरण ऐसे
अतीन्द्रियम्	=	इन्द्रियातीत ज्ञान को
अशेषतः	=	पूर्णतया
मुख्यम्	=	मुख्य कहते हैं।

Meaning:-

Mukhya or supreme [Pratyakşa] is clear in every respect, has no dependance on any sense and arises after destruction of all obstructions by perfection of sāmagrī. [Dravya, ksetra, kāla and Bhāva]

सूत्रार्थ :–

जिसके समस्त आवरण सामग्री की विशेषता से दूर हो गये हैं ऐसे अतीन्द्रिय और पूर्णतया विशद ज्ञान को मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

❖ योग्य द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की प्राप्ति को सामग्री कहते हैं। उन सभी सामग्री को एक साथ प्राप्त करना ही उस सामग्री की विशेषता है।

❖ मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मनःपर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण इन पाँचों ज्ञान के आवरणों के नाश होने पर अतीन्द्रिय केवलज्ञान की प्राप्ति होती है इसे ही मुख्य प्रत्यक्ष कहते हैं।

❖ यह मुख्य प्रत्यक्ष दो प्रकार का होता है।

1. सकल मुख्य प्रत्यक्ष – केवलज्ञान
2. विकल मुख्य प्रत्यक्ष – अवधिज्ञान एवं मनःपर्यय ज्ञान

❖ विकल प्रत्यक्ष ज्ञान भी आत्मा से ही होता है। इसलिए अतीन्द्रिय होने से इसे मुख्य प्रत्यक्ष में गिना जाता है।

मुख्य प्रत्यक्ष के विशद होने का कारण

"सावरणत्वे करणजन्यत्वे च प्रतिबंधसम्भवात्" ॥ 12 ॥

अन्वयार्थ :–

सावरणत्वे	=	आवरण सहित ज्ञान में
च	=	और
करणजन्यत्वे	=	इन्द्रिय जनित ज्ञान में
प्रतिबन्ध–	=	रुकावट
सम्भवात्	=	संभव होने से

Meaning:-

Obstruction may arise in the case of a knowledge which is caused by senses and which has hindrances.

सूत्रार्थ :–

आवरण सहित और इन्द्रियों की सहायता से उत्पन्न होने वाले ज्ञान का प्रतिबंध संभव है।

❖ मुख्य प्रत्यक्ष इसलिए विशद है क्योंकि उसमें प्रतिबंध [रुकावट या बाधा] नहीं होता। वह प्रतिबंध होने का कारण ज्ञान का आवरण सहित होना एवं इन्द्रियों से उत्पन्न होना माना जाता है।

द्वितीय परिच्छेद का सारांश

इस अध्याय में प्रत्यक्ष प्रमाण के दो भेदों का वर्णन किया गया है। सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष और मुख्य प्रत्यक्ष। यद्यपि आचार्य माणिक्यनंदी जी ने इन दोनों प्रत्यक्षों के उपभेदों का वर्णन नहीं किया है फिर भी जैन सिद्धांत के अनुसार यह समझ लेना चाहिए कि सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष भी चार प्रकार का होता है। अवग्रह, ईहा, अवाय और धारणा। इन सभी ज्ञानों का विषय प्रत्यक्ष होने से ये सभी ज्ञान सांव्यवहारिक

प्रत्यक्ष कहलाते हैं। मुख्य प्रत्यक्ष के भेद तो सकल और विकल के भेद से दो प्रकार के कहे है। इस तरह प्रत्यक्ष ज्ञान प्रमाण है। यह सिद्धांत इस अध्याय में बताया गया है।

निश्चयात्मक भाव श्रुतज्ञान को प्रत्यक्ष ज्ञान कहा है। इस अपेक्षा से श्रुतज्ञान भी कथञ्चित् प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। यह अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष या मानस प्रत्यक्ष कहलाता है। आचार्य विद्यानन्दस्वामी ने प्रमाण परीक्षा ग्रन्थ में प्रत्यक्ष के तीन भेद किये हैं।

'तत् त्रिविधं इन्द्रियानिन्द्रिय प्रत्यक्षविकल्पनात्'

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि प्रत्यक्ष ज्ञान तीन प्रकार का है।

1. इन्द्रिय प्रत्यक्ष 2. अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष 3. अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष

इसमें इन्द्रिय प्रत्यक्ष में मतिज्ञान को, अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष में भावश्रुतज्ञान को और अतीन्द्रिय प्रत्यक्ष में अवधि, मनःपर्यय, केवलज्ञान को गर्भित कर लें तो सभी ज्ञानों में प्रत्यक्षपना सिद्ध हो जाता है।

❖ अनिन्द्रिय मन को कहते हैं। ध्यान की अवस्था में यह मन काम करता रहता है।

❖ अतीन्द्रिय यानि इन्द्रियातीत, आत्मा से सीधा उत्पन्न होने वाला ज्ञान।

आध्यात्मिक दृष्टिकोण से ही श्रुतज्ञान कथञ्चित् प्रत्यक्ष सिद्ध होता है। वस्तुतः आचार्य अकलंक देव ने इसे परोक्ष प्रमाण ही माना है। आचार्य अकलंक देव ने मतिज्ञान और उसके भेदों को ही सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के रूप में स्वीकारा है, यह तथ्य उनके 'लघीयस्त्रय' आदि ग्रन्थों को पढ़ने से स्पष्ट होता है। अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष में भाव श्रुतज्ञान का ग्रहण हो सकता है, यह हमारा अपना अभिप्राय है। लघीयस्त्रय की विवृत्ति में मतिज्ञान के स्मृति, संज्ञा आदि भेदों को ही अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष कहा है।

'अनिन्द्रिय प्रत्यक्षं स्मृति संज्ञा चिन्ताभिनिबोधात्मकम्' श्लोक 16 की टीका

इससे स्पष्ट होता है कि पूर्वाचार्यों में अकलंक देव आदि ने सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष के दो भेद किये हैं। एक इन्द्रिय प्रत्यक्ष, दूसरा अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष। इन्द्रिय प्रत्यक्ष में मतिज्ञान 'मति' रूप में ग्रहण किया है और अनिन्द्रिय प्रत्यक्ष में स्मृति, संज्ञा, चिन्ता और अभिनिबोध को लिया है।

卐

अथ तृतीयः परिच्छेदः

परोक्ष का लक्षण

"परोक्षमितरत्" ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :-

परोक्षम्	=	परोक्ष ज्ञान
इतरत्	=	भिन्न [प्रत्यक्ष से भिन्न] है।

Meaning:-

The other variety of Pramāṇa is parokṣa.

सूत्रार्थ :-

जो प्रत्यक्ष से भिन्न है वह परोक्ष है।

❖ अविशद ज्ञान परोक्ष है अर्थात् जिस ज्ञान का प्रतिभास निर्मल नहीं होता वह परोक्ष कहा जाता है।

❖ परोक्ष - अक्षाणाम् परं परोक्षम्, अक्षेभ्यः परतो वर्तनं वर्तत इति वा परोक्षम्। आत्मा से भिन्न इन्द्रियादि जो पर हैं, उनकी सहायता की अपेक्षा रखने वाला ज्ञान परोक्षज्ञान है।

परोक्ष के भेद व कारण

"प्रत्यक्षादिनिमित्तं स्मृतिप्रत्यभिज्ञानतर्कानुमानागमभेदम्"

॥2॥

अन्वयार्थ :-

प्रत्यक्षादि-	=	प्रत्यक्षादि के
निमित्तम्	=	कारण वाला

स्मृति- = स्मरण,

प्रत्यभिज्ञान- = प्रत्यभिज्ञान,

तर्क- = तर्क,

अनुमान- = अनुमान,

आगम- = आगम

भेदम् = भेद से ज्ञान होता है।

Meaning:-

[Parokṣa] consists of varieties smriti, Pratyabhijñāna, Tarka, Anumāna and Āgama and is caused by Pratyakṣa etc.

सूत्रार्थ :-

प्रत्यक्षादि जिसके निमित्त हैं ऐसा परोक्ष प्रमाण 5 प्रकार का है। स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान और आगम ।

❖ ये पाँचों परोक्ष प्रमाण परस्पर में कारण हैं तथा प्रत्यक्ष भी उन सभी का कारण है।

स्मृति प्रमाण का लक्षण

''संस्कारोद्‌बोधनिबन्धना तदित्याकारा स्मृतिः'' ॥3॥

अन्वयार्थ :-

संस्कार- = [धारण, ज्ञानरूप] संस्कार की

उद्‌बोध- = प्रकटता के

निबंधना = कारण से

तत् = वह

इति = इस प्रकार

आकारा = आकार है, यह

स्मृतिः = स्मरण है

Meaning:-

Remembrance is of the form " it is that" Produced by the raising up to previous experience.

सूत्रार्थ :-

[धारण रूप] संस्कार की प्रकटता जिसमें कारण है ऐसे [तत्] वह [इति] इस प्रकार के आकार वाले ज्ञान को स्मृति कहते हैं।

❖ संस्कार से तात्पर्य यहाँ धारणामतिज्ञान से है।

❖ स्मृति का मुख्य कारण धारण ज्ञान है।

❖ जिस वस्तु को कहीं देख कर उसका बुद्धि में निश्चय किया है वह धारणा ही फिर कभी स्मरण हो आती है तो वह स्मृतिज्ञान कहलाता है।

दृष्टान्त

''स देवदत्तो यथा'' ॥4॥

अन्वयार्थ :-

यथा = जैसे

सः = वह

देवदत्तः = देवदत्त है

Meaning:-

As for example, "This is Devadatta".

सूत्रार्थ :-

जैसे कि वह देवदत्त है।

उदाहरण - जब पहले हमने कहीं देवदत्त नामके व्यक्ति को देखा और

पहिचान लिया था। तो वह देवदत्त हमारे धारणा मतिज्ञान का विषय हो गया। जब उस देवदत्त को हम फिर कहीं दोबारा देखते हैं तो उस धारणा का संस्कार प्रकट हो जाता है और हमें ज्ञान होता है कि- अरे! 'वह देवदत्त है।' इससे सिद्ध होता है कि स्मृति पूर्व में हुए धारणा ज्ञान के बिना उत्पन्न नहीं होती है।

❖ धारणा मतिज्ञान का ही एक अन्तिम भेद है। उस धारणा से पुनः ज्ञान प्राप्ति होना ही एक तरह से स्मृतिज्ञान की प्राप्ति है।

❖ सूत्र 2 में स्मृति ज्ञान का कारण 'प्रत्यक्ष आदि निमित्त' कहा है। इससे स्पष्ट किया है कि प्रत्यक्ष प्रमाण अलग है और स्मृति रूप परोक्ष प्रमाण भिन्न है। इतना अवश्य है कि यह परोक्ष प्रमाण उस प्रत्यक्ष प्रमाण के कारण ही उत्पन्न होता है।

❖ इस तरह परोक्ष प्रमाण का प्रथम भेद स्मृतिज्ञान है।

प्रत्यभिज्ञान का स्वरूप व कारण

''दर्शनस्मरणकारणकं संकलनं प्रत्यभिज्ञानम् तदेवेदं तत्सदृशं तद्विलक्षणं तत्प्रतियोगीत्यादि'' ॥5॥

अन्वयार्थ :-

दर्शन-	=	दर्शन और
स्मरण-	=	स्मरण के
कारणकम्	=	कारण वाला तथा
सङ्कलनम्	=	जोड़ रूप ज्ञान
प्रत्यभिज्ञानं	=	प्रत्यभिज्ञान है
तत्	=	वह
एव	=	ही
इदं	=	यह है।

तत्	=	उसके
सदृशं	=	समान है
तत्	=	उससे
विलक्षणं	=	विलक्षण (भिन्न) है
तत्	=	उसके
प्रतियोगी	=	किसी वस्तु का प्रतिरूप बताने वाला प्रतियोगी हो
इत्यादि	=	इस प्रकार और भी है।

Meaning:-

Pratyabhijñāna is the deduction following from Darsāna and Smriti e.g. this is verily that, this is like that, this is different from that, this is opposite to that etc.

सूत्रार्थ :-

दर्शन और स्मरण जिसमें कारण हैं ऐसे जोड़रूप ज्ञान को प्रत्यभिज्ञान कहते हैं।

जैसे - यह वही है, यह उसके समान है। यह उससे विलक्षण है, यह उसका प्रतियोगी है इत्यादि

❖ ज्ञान जब जिस धर्म को ग्रहण करता है तब उसका नाम भी वैसा ही पड़ जाता है

जैसे-

1. यह वही है	-	एकत्व प्रत्यभिज्ञान
2. यह उसके सदृश है	-	सादृश्य प्रत्यभिज्ञान
3. यह उससे विलक्षण है	-	वैलक्षण्य प्रत्यभिज्ञान

4. यह उसका प्रतियोगी है – प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान

❖ किसी देवदत्त नामके व्यक्ति को पहले देखकर जब उसका स्मरण हो आता है कि उसे हमने कहीं पहले देखा है तो वह स्मृतिज्ञान है। फिर जब हम उस स्मृति को प्रत्यक्ष में खड़े उस व्यक्ति से जोड़कर जानते है कि 'यह वही देवदत्त है' तो यह प्रत्यभिज्ञान है।

❖ स्मृति + प्रत्यक्ष = प्रत्यभिज्ञान।

❖ हिन्दू दर्शन में इसे 'उपमान' प्रमाण कहा है।

❖ एक उदाहरण से इन सभी भेदों को समझा जा सकता है।

मान लो आपने एक घोड़ा देखा, दूसरे दिन जब आप रास्ते पर निकले तो आपको वही घोड़ा फिर देखने को मिला तो आपने कहा यह वही घोड़ा है। जो कल देखा था यह एकत्व प्रत्यभिज्ञान हुआ। फिर कभी एक घोड़ा देखा जो वही नहीं था किन्तु उसके जैसा था इसलिए यह सादृश्यप्रत्यभिज्ञान हुआ। रथ में लगे निर्जीव घोड़ों को देखकर (जैसा कि सिवनी में है) ये घोड़े तो उससे भिन्न है यह विलक्षण प्रत्यभिज्ञान हुआ। यह घोड़ा उस घोड़े से छोटा या बड़ा है जो पहले देखा था इस प्रकार प्रतियोगीप्रत्यभिज्ञान होता है।

❖ वस्तु की अपनी विशेषताओं के साथ हम जो कुछ भी जानते है वह ज्ञान प्रत्यभिज्ञान में गर्भित होता है ऐसा 'इत्यादि' पद से सूत्र में कहा है। जैसे यह हंस है, इसकी चोंच में नीर-क्षीर अलग करने का गुण है, यह गेंड़ा है, यह सात पत्तों वाला सप्तपर्ण वृक्ष है। इत्यादि।

प्रत्याभिज्ञानों के दृष्टान्त

"यथा स एवायं देवदत्तः, गोसदृशो गवयः गोविलक्षणो महिषः इदमस्माद्दूरम् वृक्षोऽयमित्यादि"॥6॥

अन्वयार्थ :-

यथा	=	जैसे

सः	=	वह
एव	=	ही
अयम्	=	यह
देवदत्तः	=	देवदत्त है।
गो-	=	गाय के
सदृशः	=	समान
गवयः	=	गायें हैं।
गो-	=	गाय से
विलक्षणः	=	भिन्न
महिषः	=	भैस है।
इदम्	=	यह
अस्मात्	=	इससे
दूरम्	=	दूर है।
अयम्	=	यह
वृक्षः	=	वृक्ष है
इत्यादि	=	इस प्रकार।

Meaning:-

As for example, this is that devadatta, A Gavaya is like a cow, A buffalo is different from a cow, This is for from this, This is a tree etc.

सूत्रार्थ :-

जैसे कि यह वही देवदत्त है [एकत्व प्रत्यभिज्ञान]। गाय के समान नील गाय होती है [सदृश्य प्रत्यभिज्ञान]। गाय से भिन्न भैसा होता है [विलक्षण प्रत्यभिज्ञान]। यह इससे दूर है। यह उसका [प्रतियोगी है। प्रतियोगी प्रत्यभिज्ञान] यह वृक्ष है

इत्यादि और भी प्रत्यभिज्ञान अपनी बुद्धि से जान लेना चाहिए।

❖ स्मृति और प्रत्यभिज्ञान का देवदत्त के विषय में दिया गया दृष्टान्त एक जैसा लगता है। किन्तु इसमें भिन्नता है। जो इस प्रकार है - वस्तु सामने प्रत्यक्ष हो तब स्मृति हो सकती है और प्रत्यक्ष न हो तब भी हो सकती है। किन्तु प्रत्यभिज्ञान तो सामने वस्तु होने पर ही होता है।

❖ स्मृति में पूर्व का प्रत्यक्ष हुआ पदार्थ निमित्त बनता है किन्तु प्रत्यभिज्ञान में वर्तमान (अभी सामने का) प्रत्यक्ष हुआ पदार्थ निमित्त बनता है।

❖ स्मृति में पदार्थ का स्मरण हो आता है जबकि प्रत्यभिज्ञान में पदार्थ में सदृशता, एकता आदि का ज्ञान करते हैं।

तर्क प्रमाण का स्वरूप व कारण

''उपलम्भानुपलम्भनिमित्तं व्याप्तिज्ञानमूहः'' ॥7॥

अन्वयार्थ :-

उपलम्भ-	=	निश्चित और
अनुपलम्भ-	=	अनिश्चित के
निमित्तम्	=	कारण
व्याप्तिज्ञानम्	=	व्याप्ति का ज्ञान होना
ऊहः	=	तर्क है।

Meaning:-

The knowledge of universal concomitance arising from finding and not finding is Ūha (or Tarka)

सूत्रार्थ :-

उपलम्भ [अन्वय] और अनुलम्भ [व्यतिरेक] के निमित्त से जो व्याप्ति का ज्ञान होता है उसे ऊह/तर्क प्रमाण कहते है।

❖ यह तर्क प्रमाण प्रत्यक्ष प्रमाण से भिन्न है। प्रत्यक्ष प्रमाण से तो हम अग्नि और धुँए को अलग-अलग या एक साथ देख सकते है। अग्नि और धुँए का जो अविनाभाव सम्बन्ध है वह इस तर्क प्रमाण से ही जाना जाता है।

❖ जब हम कई बार धुँए को देखते है तो हम अग्नि भी वहीं पाते हैं। यही प्रत्यक्षज्ञान जब निश्चित हो जाता है तो हम किसी भी समय किसी भी स्थान पर धुँए को देखकर अग्नि के सद्भाव की भी व्याप्ति का निश्चय कर लेते हैं, बस यही अविनाभाव सम्बन्ध कि 'धुँआ अग्नि से अलग नहीं है' व्याप्ति कहलाता है। इसी को तर्क कहते है।

❖ व्याप्ति ज्ञान हेतु और साध्य के बीच का एक विशिष्ट सम्बन्ध बताता है।

व्याप्ति बनाने का ढंग और उसका उदाहरण

''इदमस्मिन् सत्येव भवत्यसति तु न भवत्येव'' ॥8॥

''यथाऽग्नावेव धूमस्तदभावे न भवत्येवेति च'' ॥9॥

अन्वयार्थ :-

इदम्	=	यह
अस्मिन्	=	इसके
सति	=	होने पर
एव	=	ही
भवति	=	होता है
तु	=	तथा
असति	=	नहीं होने पर
न भवति एव	=	नहीं होता है

यथा	=	जैसे
अग्नौ	=	अग्नि होने पर
एव	=	ही
धूमः	=	धुआं है
च	=	और
तत्-	=	उसके
अभावे	=	अभाव में
न	=	नहीं
एव	=	ही
भवति	=	होता है
इति	=	इस प्रकार

Meaning:-

Such as, this exists when that exists and this does not exist when that does not exist.

For example, smoke exists only in fire and when there is no fire, there is no smoke.

सूत्रार्थ :-

यह वस्तु इस वस्तु के होने पर ही होती है और इस वस्तु के नहीं होने पर नहीं होती है। जैसे - अग्नि के होने पर ही धूम होता है और अग्नि के अभाव में धूम नहीं होता है।

❇ व्याप्ति दो प्रकार की होती है - 1. अन्वय व्याप्ति 2. व्यतिरेक व्याप्ति

❇ उदाहरण - सूर्य के होने पर दिन होता है और सूर्य के न होने पर दिन नहीं होता है इसी अविनाभाव सम्बन्ध का नाम व्याप्ति है।

❇ अन्वय व्याप्ति में साध्य को पहले रखकर साधन सद्भाव दिखाया जाता है।

❇ व्यतिरेक व्याप्ति में साध्य के नहीं होने पर साधन का अभाव दिखाना चाहिए।

उपर्युक्त उदाहरण में सूर्य साध्य है और दिन साधन है तथा इसी प्रकार धूम साधन है अग्नि साध्य है।

अनुमान का लक्षण

''साधनात् साध्य विज्ञानमनुमानम्'' ॥ 10 ॥

अन्वयार्थ :-

साधनात्	=	साधन से
साध्य-	=	साध्य का
विज्ञानम्	=	विशिष्ट ज्ञान
अनुमानम्	=	अनुमान है।

Meaning:-

Anumāna [inference] is the knowledge of sādhya [the major term] from sadhāna [the middle term].

सूत्रार्थ :-

साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं।

❇ इस अनुमान ज्ञान को लैंगिक ज्ञान कहते हैं।

❇ लिङ्ग चिह्न या हेतु को कहते है। जैसे धुँआ

❇ लिङ्गी साध्य को कहते है। जैसे अग्नि

❇ लिङ्ग से लिङ्गी का ज्ञान अर्थात् साधन से साध्य का ज्ञान ही अनुमान (लैगिंक) ज्ञान कहलाता है।

❇ यह ज्ञान तर्क के बाद ही उत्पन्न होता है।

❖ तर्क प्रमाण में अविनाभाव सम्बन्ध लगाया जाता है वही तर्क जब दृढ़ हो जाता है तो अनुमान प्रमाण बन जाता है।

❖ तर्क प्रमाण से साधन - साध्य का सम्बन्ध निश्चित किया जाता है किन्तु अनुमान प्रमाण में सम्बन्ध निश्चित हो जाने के बाद साधन को देखते ही साध्य का ज्ञान कर लेते हैं। जैसे धुँए को देखकर यह सोचना कि अग्नि के होने पर धुँआ होता है और नहीं होने पर नहीं होता है। यह तर्क प्रमाण है और धुँए को देखते ही अग्नि का अनुमान लगा लेना यह अनुमान प्रमाण है।

साधन का लक्षण

''साध्याविनाभावित्वेन निश्चितो हेतुः'' ॥ 11 ॥

अन्वयार्थ :-

साध्य-	=	साध्य के साथ
अविनाभावित्वेन	=	अविनाभावी होने से जो
निश्चितः	=	निश्चित होता है
हेतुः	=	वह हेतु है

Meaning:-

Hetu [or Sādhana or linga) is that which is fixed in concomitance with sādhya.

सूत्रार्थ :-

साध्य के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो उसे हेतु [साधन] कहते हैं।

❖ जो जिसके बिना न हो उसे अविनाभाव कहते हैं।

❖ हेतु / साधन / निबन्धन / निमित्त / कारण / लिंग ये सब एकार्थवाची शब्द है।

❖ अनुमान के लक्षणों में जो 'साधन' शब्द आया है उसका यहाँ लक्षण बताया है।

❖ जो साध्य के बिना नहीं रहता है, वह साधन है, हेतु है। यह साधन साध्य का निश्चय करा देता है, यही इसका एक लक्षण है जैसे धूम ही अग्नि का निश्चय करा देता है।

अविनाभाव संबंध के भेद

''सहक्रमभवनियमोऽविनाभावः'' ॥ 12 ॥

अन्वयार्थ :-

सह-	=	एक साथ और
क्रमभव-	=	क्रम से होने का
नियमः	=	नियम
अविनाभावः	=	अविनाभाव है।

Meaning:-

Avinābhāva [or vyāpti] is the rule of co-existence or the existence of one following the other [being related as cause and effect].

सूत्रार्थ :-

सहभव नियम और क्रमभव नियम को अविनाभाव कहते हैं।

❖ एक साथ रहने वाले साध्य-साधन के संबंध को सहभाव अविनाभाव कहते हैं।

❖ काल के भेद से क्रमपूर्वक होने वाले साध्य-साधन के संबंध को क्रमभाव अविनाभाव कहते हैं।

सहभाव अविनाभाव का विषय

''सहचारिणो र्व्याप्यव्यापकयोश्च सहभाव:'' ॥ 13 ॥

सहचारिण:	=	सहचारी
च	=	और
व्याप्य-व्यापकयो:	=	व्याप्य-व्यापक में
सहभाव:	=	सहभाव होता है।

Meaning:-

Sahabhava exists in objects co-existent or in objects Vyapya and Vyapaka.

सूत्रार्थ :-

सहचारी और व्याप्य-व्यापक पदार्थों में सहभाव नियम होता है।

❖ सहचारी संबंध साथ में रहने वाले द्रव्य और गुणों में होता है। जैसे - आत्मा में रहने वाले ज्ञान-दर्शन गुण यहाँ ज्ञान और दर्शन का आत्मा के साथ सहचर संबंध है। इसी तरह पुद्गल में रूप और रस का सहचर संबंध पाया जाता है।

❖ व्यापक अर्थात् बहुत स्थान में रहने वाला। व्याप्य अर्थात् थोड़े स्थान में रहने वाला।

❖ जैसे - किसी बगीचे में बहुत सारे वृक्ष लगे हैं उसी बगीचे में एक शीशम का भी वृक्ष है तो वृक्षत्व व्यापक हुआ और शिंशपा [शीशम] व्याप्य हुआ।

क्रमभाव अविनाभाव का विषय

''पूर्वोत्तरचारिणो: कार्यकारणयोश्च क्रमभाव:'' ॥ 14 ॥

अन्वयार्थ :-

पूर्वोत्तर-चारिणो:	=	पूर्वचर, उत्तरचर में
च	=	और
कार्यकारणयो:	=	कार्य, कारण में
क्रमभाव:	=	क्रमभाव होता है

Meaning:-

Krama-bhāva exists in cases when one follows the other or in the case of cause and effect.

सूत्रार्थ :-

पूर्वचर और उत्तरचर में तथा कार्य और कारण में क्रमभाव नियम होता है।

❖ जैसे आज शनिवार है तो शुक्रवार शनिवार के लिए पूर्वचर हेतु हुआ और रविवार शनिवार के लिए उत्तरचर हेतु है।

शुक्रवार --- शनिवार --- रविवार

। ।

पूर्वचर हेतु उत्तरचर हेतु

❖ कार्य - कारण में क्रमभाव संबंध होता है जैसे मिट्टी कारण है और घड़ा कार्य है और घट कारण है कपाल कार्य है अथवा अग्नि कारण है धुँआ कार्य है।

अविनाभाव ज्ञान किस प्रमाण से जाना जाता है

''तर्कात्तन्निर्णय:'' ॥ 15 ॥

अन्वयार्थ :-

तर्कात्	=	तर्क प्रमाण से
तत्	=	उस अविनाभाव का
निर्णय:	=	निश्चय होता है।

Meaning:-

This is ascertained by Tarka.

सूत्रार्थ :-

अविनाभाव संबंध का निश्चय [निर्णय] तर्क प्रमाण से होता है।

साध्य का लक्षण

"इष्टमबाधितमसिद्धं साध्यम्" ॥ 16 ॥

अन्वयार्थ :-

इष्टम्	=	इष्ट [अभिप्रेत]को
अबाधितम्	=	अबाधित को और
असिद्धम्	=	असिद्ध को
साध्यम्	=	साध्य [कहते हैं।]

Meaning:-

Sādhya is what is desired and what is Abādhita [i.e. opposed to pratyaksa etc.] and what is not siddha [already established].

सूत्रार्थ :-

इष्ट, अबाधित और असिद्धभूत पदार्थ को साध्य कहते है।

❇ इस सूत्र में इष्ट, अबाधित, और असिद्ध ये तीन विशेषण है।

❇ इस सूत्र में साध्य लक्ष्य है और इष्ट, अबाधित और असिद्ध लक्षण है।

❇ इष्ट - जिस साध्य को वादी सिद्ध करना चाहता है वह इष्ट है।

❇ जिसमें प्रत्यक्ष, परोक्ष प्रमाण से कोई बाधा न हो वह अबाधित है।

❇ जो किसी प्रमाण से पूर्व में सिद्ध न किया गया हो वह असिद्ध है।

❇ जब कोई वकील किसी केश को हाथ में लेता है तो उसके साध्य में ये तीनों लक्षण घटित होते है।

वह उसी केश को हाथ में लेगा जो उसे इष्ट है। जिसे किसी प्रमाण से सिद्ध करने में बाधा न आय और जिसका पहले निर्णय न हुआ हो। इसी तरह न्याय के विषय में समझना।

असिद्ध विशेषण का प्रयोजन

"सन्दिग्धविपर्यस्ताव्युत्पन्नानां साध्यत्वं यथा स्यादित्यसिद्धपदम्" ॥ 17 ॥

अन्वयार्थ :-

संदिग्ध-	=	अनिर्णीत
विपर्यस्त-	=	विपरीतपना और
अव्युत्पन्नानाम्	=	यथावत् निर्णीत न होने वाले पदार्थों का
साध्यत्वं	=	साध्यपना
यथा	=	जैसे
स्यात्	=	हो
इति	=	इसलिए
असिद्धपदम्	=	असिद्ध पद है।

Meaning:-

The word 'Asiddha' has been used in defining sādhya so that the doubtful, the false and the not understood may become sādhya.

सूत्रार्थ :-

संदिग्ध, विपर्यय और अव्युत्पन्न [अनध्यवसाय] पदार्थों को साध्यपना जिस प्रकार से माना जा सके इसलिए साध्य के लक्षण में असिद्ध पद दिया है।

❇ यह असिद्ध पद प्रतिवादी की अपेक्षा से होता है।

❈ प्रतिवादी के लिए वह साध्य संदिग्ध, विपर्यय और अव्युत्पन्न होना चाहिए, तभी तो वादी उसे सिद्ध करेगा इसलिए साध्य के लक्षण में दिया गया असिद्ध पद सार्थक है।

❈ जिस विषय में संदेह हो, जिस विषय का विपरीत ग्रहण हुआ है और जिस विषय का कभी निर्णय ही न किया गया हो, वही असिद्ध विषय है।

इष्ट तथा अबाधित विशेषणों का प्रयोजन

''अनिष्टाध्यक्षादिबाधितयोः साध्यत्त्वं मा भूदितीष्टाबाधितवचनम्'' ॥18॥

अन्वयार्थ :-

अनिष्ट-	=	जो इष्ट न हो,
अध्यक्ष-	=	प्रत्यक्ष
आदि-	=	आदि
बाधितयोः	=	से बाधित हो उसका
साध्यत्वं	=	साध्यपना
मा	=	नहीं
अभूत्	=	होता है
इति	=	इसलिए
इष्टाबाधित-	=	इष्ट-अबाधित
वचनम्	=	वचन हैं।

Meaning:-

The words "Iṣṭa" and "Abādhita" have been used so that what is not desired and what is opposed to pratyakṣa etc. might not be [Included in the definition

of] sādhya.

सूत्रार्थ :-

अनिष्ट और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित पदार्थों के साध्यपना न माना जाए, इसलिए इष्ट और अबाधित ये दो विशेषण दिए गए है।

❈ जिस वस्तु को वादी सिद्ध नहीं करना चाहता है उसे अनिष्ट कहते हैं।

❈ प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से जो विषय बाधित हो उसे बाधित विषय कहते हैं।

❈ इस सूत्र में यह बताया गया है कि अनिष्ट और प्रत्यक्षादि से बाधित विषय वाले साध्य नहीं होते। साध्य इष्ट और अबाधित होना चाहिए। यदि साध्य अनिष्ट होगा तो वादी उसे कभी स्वीकार नहीं करेगा। वादी उसे ही सिद्ध करता है जो इष्ट हो इसलिए इस सूत्र में अनिष्ट का साध्यपना नहीं होता है, यह बताया गया है। इसी प्रकार वादी उसे सिद्ध करता है जो प्रत्यक्षादि से बाधित न हो जैसे- अग्नि शीतल होती है, घट दिखाई नहीं देता इत्यादि विषयों को वादी कभी साध्य नहीं बनाता। इसलिए सूत्र में कहा गया कि अबाधित विषयों का साध्यपना नहीं होता ।

साध्य का इष्ट विशेषण वादी की अपेक्षा

''न चासिद्धवदिष्टं प्रतिवादिनः'' ॥19॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
असिद्धवत्	=	असिद्ध के समान
प्रतिवादिनः	=	प्रतिवादी की अपेक्षा से
इष्टम्	=	इष्ट विशेषण
न	=	नहीं है।

Meaning:-

In the case of an adversary, 'Iṣṭa' is not required like "Asiddha".

सूत्रार्थ :-

असिद्ध के समान इष्ट विशेषण प्रतिवादी की अपेक्षा से नहीं है।

❇ जो पहले अपने पक्ष को स्थापित करता है रखता है उसे वादी कहते हैं।

❇ जो उसका निराकरण करता है उसे प्रतिवादी कहते हैं।

वादी कौन होता है

''प्रत्यायनाय हीच्छा वक्तुरेव'' ॥20॥

प्रत्यायनाय	=	दूसरे को समझने के लिए
इच्छा	=	अभिलाषा
हि	=	निश्चय से
वक्तुः	=	वक्ता की
एव	=	ही है।

Meaning:-

The intention to explain exists only in the speaker.

सूत्रार्थ :-

दूसरे को समझाने की इच्छ वादी [वक्ता] की ही होती है प्रतिवादी को नहीं किन्तु प्रतिवादी को उसके खण्डन की इच्छा होती है।

❇ इच्छा का विषयभूत पदार्थ इष्ट कहलाता है।

साध्य का विषय और क्या होता है

''साध्यं धर्मः क्वचित्तद्विशिष्टो वा धर्मी'' ॥21॥

अन्वयार्थ :-

क्वचित्	=	कहीं पर
साध्यम्	=	साध्य
धर्मः	=	धर्म है
वा	=	और कहीं
तत्-	=	उस
विशिष्टः	=	विशेषण से युक्त
धर्मी	=	धर्मी

Meaning:-

Sādhya is a Dharma and sometimes it is Dharmi in which there is the abode of the Dharma.

सूत्रार्थ :-

कहीं पर धर्म साध्य होता है और कहीं पर धर्म विशिष्ट [सहित] धर्मी

❇ व्याप्ति प्रयोग के समय धर्म ही साध्य होता है और अनुमान प्रयोग के समय धर्म से विशिष्ट धर्मी साध्यपने से प्रयुक्त होता है।

❇ जब हम व्याप्ति का ज्ञान करते हैं तो साध्य ही धर्म होता है। जैसे जहाँ धुँआ है वहाँ अग्नि है, यहाँ पर साध्य अग्नि हुई, यह अग्नि रूप धर्म ही व्याप्ति के समय साध्य होता है किंतु इसके बाद जब हम किसी पर्वत आदि में अग्नि सिद्ध करते हैं, तो उस अनुमान प्रयोग के समय यह पर्वत अग्निवाला है इस प्रकार से कहा जाता है। उस समय पर अग्नि रूप धर्म से विशिष्ट [सहित] पर्वत साध्य हो जाता है क्योंकि पर्वत में अग्नि सिद्ध करना है। प्रस्तुत उदाहरण में पर्वत ही धर्मी है।

❇ जब साध्य केवल धर्म होता है तो उससे धर्मी का कोई ज्ञान नहीं हो पाता। जैसे- हमने धुँआ देखा तो हमें अग्नि का अनुमान हो गया किंतु वह अग्नि कहाँ पर है, इस बात का ज्ञान नहीं होता, यह तभी हो सकता है जब धर्मी को साध्य

बनाया जाय।

उसी धर्मी का दूसरा नाम

"पक्ष इति यावत्" ॥22॥

अन्वयार्थ :-

इति	=	इस प्रकार
पक्षः	=	पक्ष
यावत्	=	उसी का नाम है।

Meaning:-

This is also Known as Pakṣa [the minor term].

सूत्रार्थ :-

उसी धर्मी को पक्ष भी कहते हैं। पक्ष इस प्रकार धर्मी का ही पर्यायवाची नाम है।

धर्मी का प्रथम भेद

"प्रसिद्धो धर्मी" ॥23॥

अन्वयार्थ :-

प्रसिद्धः	=	प्रमाण से सिद्ध
धर्मी	=	पक्ष है।

Meaning:-

Dharmi is well known.

सूत्रार्थ :-

धर्मी [पक्ष] प्रसिद्ध होता है।

❖ प्र = प्रमाण + सिद्ध = प्रसिद्ध धर्मी कहलाता है।

धर्मी का दूसरा भेद

"विकल्पसिद्धे तस्मिन् सत्तेतरे साध्ये" ॥24॥

अन्वयार्थ :-

तस्मिन्	=	उसमें
विकल्पसिद्धे	=	विकल्प सिद्ध [धर्मी में]
सत्ता-	=	अस्तित्व
इतरे	=	नास्तित्व [असत्ता]
साध्ये	=	दोनों साध्य है।

Meaning:-

When it [Dharmi] is established by vikalpa, the sādhya consists of existence and non-exitence.

सूत्रार्थ :-

उस विकल्प सिद्ध धर्मी में सत्ता और असत्ता ये दोनों ही साध्य है।

❖ धर्मी के दूसरे भेद का नाम विकल्प सिद्ध धर्मी है यह दो प्रकार का होता है ।- 1. एक विकल्प सिद्ध धर्मी में सत्ता साध्य होती है।

2. दूसरे विकल्प सिद्ध धर्मी में असत्ता साध्य होती है।

❖ सत्ता अर्थात् किसी पदार्थ के अस्तित्व की सिद्धि करना।

❖ असत्ता अर्थात् नास्तित्व की सिद्धि करना।

विकल्पसिद्ध धर्मी का उदाहरण

"अस्ति सर्वज्ञो, नास्ति खरविषाणम्" ॥25॥

अन्वयार्थ :-

सर्वज्ञः	=	सर्वज्ञ

अस्ति = हैं
खर- = गधे के
विषाणम् = सींग
नास्ति = नहीं हैं।

Meaning:-

The omniscient exists. Horns of the ass do not exist.

सूत्रार्थ :-

सर्वज्ञ हैं, तथा गधे के सींग नहीं हैं।

❖ विकल्पसिद्ध धर्मी के 2 रूप हो सकते है-

1. सत्ता रूप 2. असत्तारूप

❖ सर्वज्ञ है, यह सत्ता रूप साध्य का उदाहरण है

❖ गधे के सींग नहीं है, यह असत्ता रूप विकल्प सिद्ध धर्मी का उदाहरण है।

प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी में साध्य

"प्रमाणोभयसिद्धे तु साध्य-धर्म - विशिष्टता" ॥26॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाण- = प्रमाणसिद्ध में तथा
उभयसिद्धे = प्रमाणविकल्प सिद्ध में
तु = तो
साध्य- = साध्य [पक्ष]
धर्मविशिष्टता = धर्म से युक्त धर्मी साध्य है।

Meaning:-

When [a dharmi] is established by Pramāṇa or by both [i.e. by Pramāṇa and vikalpa] it is characterised by having the dharma as sādhya.

सूत्रार्थ :-

प्रमाणसिद्ध धर्मी में और प्रमाणविकल्प (उभय) सिद्ध धर्मी में धर्म सहित धर्मी साध्य होता है।

❖ जो प्रमाण और विकल्प सिद्ध दोनों प्रकार का धर्मी होता है वह उभयसिद्ध धर्मी कहलाता है।

प्रमाणसिद्ध और उभयसिद्ध धर्मी के दृष्टान्त

"अग्निमानयं देशः परिणामी शब्द इति यथा" ॥27॥

अन्वयार्थ :-

यथा = जैसे
अयम् = यह
देशः = प्रदेश
अग्निमान् = अग्निवाला है,
शब्दः = शब्द
परिणामी = परिणमनवाला है
इति = इस प्रकार।

Meaning:-

As for example, this place has fire, sound is transient.

सूत्रार्थ :-

जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है और शब्द परिणामी है।

❇ यह प्रदेश अग्निवाला है, यह **प्रमाणसिद्ध धर्मी** का उदाहरण है।

❇ शब्द परिणामी है, यह **उभयसिद्ध धर्मी** का उदाहरण है।

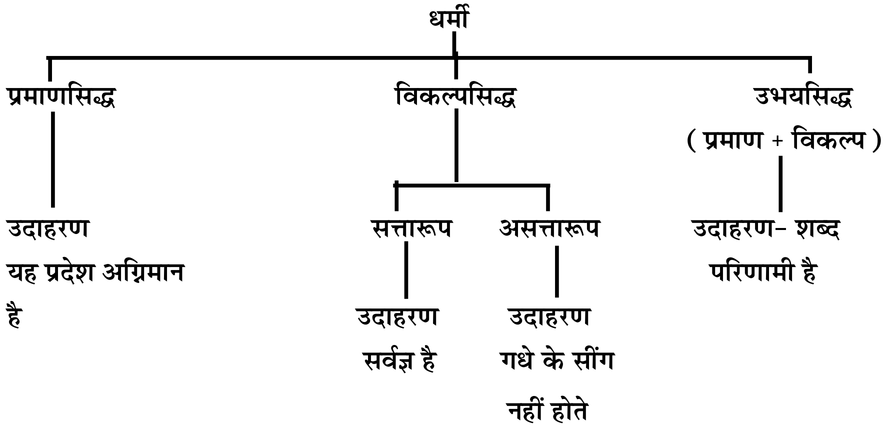

व्याप्ति काल में साध्य का नियम

"व्याप्तौ तु साध्यं धर्म एव" ॥28॥

अन्वयार्थ :-

व्याप्तौ	=	व्याप्तिकाल में
तु	=	परन्तु
साध्यम्	=	साध्य
एव	=	ही
धर्मः	=	धर्म है।

Meaning:-

In universal concomitance, the sādhya is only

Dharma [and not Dharmi].

सूत्रार्थ :-

व्याप्तिकाल में तो धर्म ही साध्य होता है धर्म विशिष्ट धर्मी नहीं।

❇ व्याप्ति काल में धर्म का साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध बनाकर ही व्याप्ति घटित होती है, धर्मी के साथ नहीं। धुँए को देखकर अग्नि की ही व्याप्ति हम लगा सकते हैं न कि पर्वत की। 'जहाँ धुँआ है वहाँ अग्नि है', यह व्याप्ति तो बन जाती है किन्तु कोई यह कहे कि 'जहाँ धूम है वहाँ पर्वत है', यह तो सम्भव नहीं है। इसी अन्तर को इस सूत्र से समझाया है कि व्याप्ति के समय साध्य धर्म होता है जैसे धुँए का साध्य अग्नि धर्म है न कि पर्वत रूप धर्म।

धर्मी को भी साध्य मानने पर होने वाला दोष

"अन्यथा तदघटनात्" ॥29॥

अन्वयार्थ :-

अन्यथा	=	अन्यथा
तत्	=	वह व्याप्ति
अघटनात्	=	घटित नहीं होने से ।

Meaning:-

Otherwise, it [i.e. universal concomitance] can not happen.

सूत्रार्थ :-

अन्यथा व्याप्ति घटित नहीं हो सकती है।

❇ अन्यथा शब्द का अर्थ है कि अर्थ के विपरीत व्याप्ति बनाना। तात्पर्य यह है यदि व्याप्ति के समय धर्म की जगह धर्मी को साध्य बनाया जायेगा तो व्याप्ति घटित नहीं हो सकती, इसका समाधान पिछले सूत्र में कर दिया है। यहाँ पर व्याप्ति

का प्रकरण पूर्ण हुआ।

'पक्ष प्रयोग' की आवश्यकता

''साध्यधर्माधारसन्देहापनोदाय गम्यमानस्यापि पक्षस्य वचनम्'' ॥30॥

अन्वयार्थ :-

साध्यधर्म-	=	साध्य रूप धर्म के
आधार-	=	आधार के विषय में
संदेह-	=	संशय को
अपनोदाय	=	दूर करने के लिए
गम्यमानस्य	=	गम्य मान [जाना हुआ]
अपि	=	भी
पक्षस्य	=	पक्ष को
वचनम्	=	कहा जाता है।

Meaning:-

The Pakṣa is used though it is understood [from Pratyakṣa] to dispel doubts regarding the abode of Sādhya when it is dharma.

सूत्रार्थ :-

साध्यधर्म के आधार में उत्पन्न हुए संदेह को दूर करने के लिए गम्यमान [जाना हुआ] भी पक्ष का प्रयोग किया जाता है।

❖ साध्य धर्म [अग्नि] के आधार में संदेह [पर्वत है या रसोई घर] को दूर करने के लिए स्वतः सिद्ध पक्ष का भी प्रयोग किया जाता है।

❖ बौद्ध लोग अनुमान में पक्ष का प्रयोग नहीं करते हैं, इसी बात का खंडन करने के लिए यहाँ अनुमान प्रमाण में पक्ष के प्रयोग की आवश्यकता दर्शायी है।

व्याप्ति ज्ञान में पक्ष की आवश्यकता भले ही न हो किन्तु अनुमान में पक्ष बताना भी आवश्यक होता है, अन्यथा यह संदेह होता है कि वह साध्य कहाँ रहता है। जैसे - वह अग्नि किसी पर्वत पर है या रसोई घर में या किसी अन्य स्थान पर।

❖ यदि हम पक्ष को छोड़ देते हैं तो हमें केवल धूम और अग्नि के बीच का संबंध ज्ञात होता है उस अग्नि का आधार नहीं।

पक्ष की सिद्धि के लिए उदाहरण

''साध्यधर्मिणि साधनधर्मावबोधनाय पक्षधर्मोपसंहारवत्'' ॥31॥

अन्वयार्थ :-

साध्यधर्मिणि	=	साध्य से युक्त धर्मी में,
साधनधर्म-	=	साधनधर्म का
अवबोधनाय	=	ज्ञान कराने के लिए
पक्षधर्म-	=	पक्ष धर्म के
उपसंहारवत्	=	उपसंहार के समान

Meaning:-

As for example, Upanaya is used to explain the dharma of Sādhana [the middle term, sign or mark] in the dharmi containing Sādhya.

सूत्रार्थ :-

जैसे साध्य से युक्त धर्मी में साधन धर्म का ज्ञान कराने के लिए पक्ष धर्म का उपसंहार [उपनय]का प्रयोग किया जाता है।

❖ चूंकि यह न्याय ग्रंथ है इसलिए उदाहरण भी न्याय का ही दिया गया है।

❖ साध्यधर्मिणि इस शब्द का अर्थ साध्य से युक्त धर्मी अर्थात पक्ष है आगे भी इस शब्द का प्रयोग इसी अर्थ में होगा। जैसे सूत्र 38 एवं 40 ।

❇ जैसे उपनय के प्रयोग में हेतु के उपसंहार के साथ हेतु का अपने निश्चित धर्मी के साथ संबंध दिखलाया जाता है उसी प्रकार साध्य का विशिष्ट धर्मी [पक्ष] के साथ संबंध बनाने के लिए पक्ष को भी कहा जाता है।

इसी अर्थ को समझाते हुए बौद्धों का उपहास

"को वा त्रिधा हेतुमुक्त्वा समर्थयमानो न पक्षयति" ॥32॥

अन्वयार्थ :-

कः	=	कौन
वा	=	लौकिक पुरुष
त्रिधा	=	तीन प्रकार के
हेतुम्	=	हेतु को
उक्त्वा	=	कह करके
समर्थयमानः	=	समर्थन करता हुआ
न	=	नहीं
पक्षयति	=	पक्ष प्रयोग करे ।

Meaning:-

Is there any one who does not use a Pakşa to substantiate after mentioning the three kinds of Hetu?

सूत्रार्थ :-

ऐसा कौन है जो कि तीन प्रकार के हेतु को कह करके उसका समर्थन करता हुआ भी पक्ष प्रयोग न करें।

❇ बौद्धों ने तीन प्रकार के हेतु माने हैं –

1. कार्य हेतु 2. स्वभाव हेतु 3. अनुपलम्भ हेतु

अथवा पक्ष वृत्ति, सपक्ष सत्त्व, विपक्ष व्यावृत्ति

❇ बौद्ध लोग अपने इन हेतुओं को निर्दोष सिद्ध करके पुनः उसका समर्थन प्रयोग के बाद करते हैं। यह भी उनका समर्थन एक तरह से पक्ष का समर्थन करना ही है। इस तरह 30,31, 32 इन तीन सूत्रों में अनुमान प्रयोग के काल में पक्ष की आवश्यकता पर जोर डाला गया है।

अनुमान के दो ही अंग है

"एतद्द्वयमेवानुमानाङ्गं नोदाहरणम्" ॥33॥

अन्वयार्थ :-

एतद्	=	ये
द्वयम्	=	दोनों [पक्ष और हेतु]
एव	=	ही
अनुमान	=	अनुमान के
अंगं	=	अंग [अवयव] हैं।
उदाहरणम्	=	उदाहरण
न	=	नहीं

Meaning :-

These two only are the limbs of Anumāna, and not the Udahāraṇa.

सूत्रार्थ :-

ये दोनों ही [पक्ष और हेतु] अनुमान के अंग हैं, उदाहरण नहीं।

उदाहरण अनुमान का अंग नहीं इसका प्रथम कारण एवं समाधान

''न हि तत्साध्यप्रतिपत्त्यङ्गं तत्र यथोक्त-हेतोरेव-व्यापारात्'' ॥34॥

अन्वयार्थ :-

हि	=	क्योंकि
तत्	=	वह उदाहरण
साध्य-	=	साध्य का
प्रतिपत्ति-	=	ज्ञान कराने के लिए
अङ्गं	=	कारण
न	=	नहीं है
तत्र	=	उस साध्य के विषय में
यथोक्त-	=	कहे हुए
हेतोः	=	हेतु का
एव	=	ही
व्यापारात्	=	व्यापार होने से ।

Meaning :-

That [Udāharaṇa] is not the cause of understanding the sādhya because, the aforesaid Hetu works there [as the cause]

सूत्रार्थ :-

वह उदाहरण साध्य का ज्ञान कराने के लिए कारण नहीं है क्योंकि साध्य के ज्ञान में यथोक्त हेतु का ही व्यापार होता है।

❖ यहाँ पर आचार्य महाराज स्वयं उन लोगों से पूछते हैं जो उदाहरण का प्रयोग आवश्यक मानते हैं कि क्या आप लोग उदाहरण की आवश्यकता साध्य का ज्ञान कराने के लिए आवश्यक मानते हैं। तो उसी का उत्तर देते हुए आचार्य महाराज

कहते हैं कि साध्य का ज्ञान तो यथोक्त हेतु के कहने से ही हो जाता है।

यथोक्त अर्थात् यथा + उक्त जैसा पहले कहा है अर्थात् सूत्र 11 में साध्य के साथ जिसका अविनाभाव संबंध है उसे हेतु कहा है। उसी हेतु के व्यापार [प्रयोग] से साध्य का ज्ञान हो जाता है, इसलिए साध्य का ज्ञान कराने के लिए उदाहरण का प्रयोग अनावश्यक है, यह सिद्ध हुआ।

❖ जब हम रसोईघर में अग्नि की सिद्धि करने के लिए यह व्याप्ति बनाते है कि ''जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है'' तो यह संबंध ही उस अग्नि को सिद्ध करने के लिए पर्याप्त होता है और उस धुऐं से वह अग्नि सिद्ध हो जाती है उसमें उदाहरण की कोई आवश्यकता नहीं रहती इसलिए साध्य की सिद्धि के लिए अनुमान ज्ञान में उदाहरण की कोई आवश्यकता नहीं है।

उदाहरण अनुमान का अंग नहीं इसका द्वितीय कारण एवं समाधान -

''तदविनाभावनिश्चयार्थं वा विपक्षे बाधकप्रमाणबलादेव तत्सिद्धेः'' ॥35॥

तत्	=	वह उदाहरण
अविनाभावनिश्चयार्थं	=	अविनाभाव के निश्चय के लिए है
वा	=	क्योंकि
विपक्षे	=	विपक्ष में
बाधक-प्रमाण-बलात्	=	बाधक प्रमाण के बल से
एव	=	ही
तत्-	=	अविनाभाव
सिद्धेः	=	सिद्ध हो जाता है

Meaning :-

[That Udāharaṇa] also is [not necessary] for establishing the universal concomitance [with the Sādhya]. That [Universal cocomitance] is established from the opposition to its adverse [character].

सूत्रार्थ :-

वह उदाहरण अविनाभाव के निश्चय के लिए भी कारण नहीं है क्योंकि विपक्ष में बाधक प्रमाण से ही अविनाभाव सिद्ध हो जाता है।

❖ आचार्य यहाँ पर दूसरा विकल्प उठाते हुए पूछते हैं कि क्या आप लोग उदाहरण का प्रयोग हेतु का अविनाभाव संबंध बताने के लिए करते हैं। यदि ऐसा है तो भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है क्योंकि वह उदाहरण उस साध्य के साथ अविनाभाव संबंध का निश्चय नहीं करा पाता है। अविनाभाव संबंध का निश्चय तो विपक्ष में बाधक प्रमाण के बल से ही सिद्ध हो जाता है।

❖ जिसमें अग्नि का अभाव है ऐसे किसी विशाल तालाब आदि को यहाँ विपक्ष समझना। उस तालाब में धुऐं रूप हेतु का नहीं होना ही बाधक का सद्भाव है। उस बाधक प्रमाण के सद्भाव से ही तालाब आदि में अग्नि नहीं है इस बात की सिद्धि हो जाती है। तालाब में अग्नि.नहीं है इसकी सिद्धि के लिए किसी उदाहरण की आवश्यकता नहीं पड़ती। किन्तु अग्नि का बाधक हेतु धुँआ ही उस सिद्धि के लिए पर्याप्त है।

उदाहरण अनुमान का अंग नहीं इसी दूसरे विकल्प का पुनः समाधान –

"व्यक्तिरूपं च निदर्शनं सामान्येन तु व्याप्तिस्तत्रापि तद्विप्रतिपत्तावनवस्थानं स्याद्दृष्टान्तान्तरापेक्षणात्" ॥36॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
निदर्शनम्	=	उदाहरण
व्यक्तिरूपम्	=	व्यक्तिरूप होता है।
तु	=	परन्तु
सामान्येन	=	सामान्य से
व्याप्तिः	=	व्याप्ति
तत्रापि	=	उस उदाहरण में भी
तद्विप्रतिपत्तौ	=	वही विवाद होने पर
अनवस्थानम्	=	अनवस्थादोष
स्यात्	=	होगा
दृष्टान्तान्तर-	=	अन्य दृष्टान्त की
अपेक्षणात्	=	अपेक्षा हो जाने से

Meaning :-

A Udāharaṇa deals only with Particular but Vyāpti deals with universal concomitance. If that is not understood the fault of Anavasthā will arise, as recourse to another example will have to be made.

सूत्रार्थ :-

निदर्शन [उदाहरण] व्यक्तिरूप होता है और व्याप्ति सामान्य से सर्वदेशकाल की उपसंहार वाली होती है। अतः उस उदाहरण में भी विवाद होने पर अन्य दृष्टान्त की अपेक्षा पड़ने से अनवस्था दोष प्राप्त होगा।

❖ आचार्य यहाँ पर उसी दूसरे विकल्प का समाधान करते हुए कहते हैं कि उदाहरण तो एक व्यक्ति रूप होता है और व्याप्ति सर्वदेश, सर्वकाल में घटित होने वाली होती है। यदि वह उदाहरण एक व्यक्ति में ही व्याप्ति को दिखा रहा है तो

फिर अन्य व्यक्तियों में व्याप्ति का ज्ञान कराने के लिए अन्य उदाहरण का प्रयोग करना पड़ेगा, वह अन्य उदाहरण किसी एक व्यक्ति में ही व्याप्ति को बताएगा। फिर अन्य व्यक्ति में व्याप्ति घटित करने के लिए अन्य उदाहरण की आवश्यकता पड़ेगी। इस तरह उदाहरण की आवश्यकता का कभी अंत नहीं होगा। इसी का नाम अनवस्था दोष है।

❖ रसोई में अग्नि को सिद्ध करने के लिए यदि हम रसोई घर का उदाहरण देते हैं तो वह उदाहरण धुँआ ओर अग्नि के बीच में अविनाभाव संबंध को स्थापित नहीं कर सकता। यदि हमें रसोई घर के उदाहरण में संशय हुआ तो हमें दूसरे उदाहरण को लाना पड़ेगा और यदि वह उदाहरण भी व्याप्ति के ज्ञान में कारण नहीं हुआ तो अन्य उदाहरण की आवश्यकता पड़ेगी। इस तरह उदाहरण की अपेक्षा बनी रहने से अनवस्था दोष आयेगा।

उदाहरण अनुमान का अंग नहीं है इसका तृतीय कारण एवं समाधान

''नापि व्याप्तिस्मरणार्थं तथाविध-हेतुप्रयोगादेव तत्स्मृतेः'' ॥ 37 ॥

अन्वयार्थ :-

व्याप्ति स्मरणार्थं	=	व्याप्ति का स्मरण करने के लिए
अपि	=	भी
न	=	उदाहरण नहीं है।
तथाविध-	=	साध्य के अविनाभावी
हेतुप्रयोगात्	=	हेतु के प्रयोग से
एव	=	ही
तत्	=	उस [व्याप्ति का]

स्मृतेः	=	स्मरण हो जाने से

Meaning :-

[This Udāharaṇa] cannot remind the universal concomitance, because such a reminiscence arises from the use of Hetu of that kind. [which is connection between smoke and fire]

सूत्रार्थ :-

व्याप्ति का स्मरण कराने के लिए भी उदाहरण की आवश्यकता नहीं है उस व्याप्ति का स्मरण तो साध्य के अविनाभावी हेतु के प्रयोग से ही हो जाता है।

❖ आचार्य यहाँ पर तीसरा विकल्प उठाते हुए पूछते हैं कि क्या आप लोग उदाहरण की आवश्यकता व्याप्ति का स्मरण करने के लिए मानते हैं ? यदि ऐसा है तो वह भी घटित नहीं होता है क्योंकि निश्चित हेतु के प्रयोग से व्याप्ति का स्मरण हो जाता है।

❖ निश्चित हेतु का प्रयोग किए बिना अविनाभाव संबंध घटित नहीं होगा। जिससे साध्य का साधन के साथ संबंध ग्रहण नहीं होगा। ऐसी स्थिति में सैकड़ों उदाहरण से भी उस व्याप्ति का स्मरण नहीं हो सकता। क्योंकि स्मरण तो पहले बुद्धि में निश्चित किए गए अविनाभाव का ही होता है और वह अविनाभाव संबंध 'जहाँ धुँआ है वहाँ अग्नि है', इस व्याप्ति से ही बनता है न कि रसोईघर का उदाहरण देने से।

केवल उदाहरण का प्रयोग करने में दोष

''तत्परमभिधीयमानं साध्यधर्मिणि साध्यसाधने सन्देहयति'' ॥ 38 ॥

अन्वयार्थ :-

तत्	=	वह
परम्	=	केवल [उदाहरण]

अभिधीयमानं	=	कहा जाने वाला
साध्यधर्मिणि	=	साध्य विशिष्ट धर्मी में
साध्यसाधने	=	साध्य के साधन करने में
संदेहयति	=	संदेह करा देता है

Meaning :-

This [Udāharaṇa] only raises a doubt in establishing sādhya [e.g. fire] in the dharmi [e.g. mountain] contaning Sādhya [e.g.fire].

सूत्रार्थ :-

उपनय और निगमन के बिना यदि केवल उदाहरण का प्रयोग किया जायेगा तो साध्य धर्म वाले पक्ष में [धर्मी में] साध्य और साधन के सिद्ध करने में संदेह करा देगा ।

❖ रसोईघर में धुँआ है इसलिए अग्नि है। इस प्रकार दिखाने पर भी अन्य पर्वत आदि में भी रसोईघर की तरह धुँआ देखने पर भी अग्नि है कि नहीं, यह संदेह बना रहता है। संदेह का कारण यह है कि दूसरे व्यक्ति को यह व्याप्ति नहीं समझाई कि भाई! 'जहाँ धूम होता है वहाँ अग्नि होती है।' इस प्रकार की व्याप्ति तो साधन के साथ साध्य का अविनाभाव सम्बन्ध दिखाने से ही बनाते है। न कि केवल रसोईघर का उदाहरण देने से। इसीलिए इस सूत्र में कहा है कि केवल उदाहरण का प्रयोग भी पक्ष में साध्य और साधन के निर्णय में असमर्थ है क्योंकि संदेह उत्पन्न होता है।

उसी अर्थ का व्यतिरेक मुख से समर्थन –

''कुतोऽन्यथोपनयनिगमने'' ॥39॥

अन्वयार्थ :-

अन्यथा	=	अन्यथा
उपनय–निगमने	=	उपनय और निगमन
कुतः	=	क्यों हो ?

Meaning :-

Otherwise, why should there be Upanaya and Nigamana ?

सूत्रार्थ :-

अन्यथा उपनय और निगमन का प्रयोग क्यों किया जाता।

❖ अनुमान के अंगों में अंतिम अंग उपनय एवं निगमन होते हैं। उससे पहले दृष्टान्त का प्रयोग किया जाता है।

❖ उदाहरण का प्रयोग संशय का कारण न बने इसलिए ही उपनय एवं निगमन का प्रयोग किया जाता है।

❖ यह पर्वत धूम वाला है [उपनय] और इसलिए ही इसमें अग्नि है [निगमन]। यह उपनय और निगमन का इस प्रकार प्रयोग उदाहरण के लिए ही करना पड़ता है। पर्वत में अग्नि सिद्ध करने के लिए रसोईघर का उदाहरण दिया। उस उदाहरण में ही साध्य और साधन रहते हैं अन्यत्र नहीं, इस प्रकार का संदेह न हो जाए इसलिए उपनय और निगमन में हेतु और प्रतिज्ञा को दोहराया जाता है। यह बात इस सूत्र में कही गयी है।

उपनय और निगमन अनुमान के अंग नहीं

''न च ते तदङ्गे साध्यधर्मिणि हेतुसाध्ययोर्वचनादेवासंशयात्'' ॥40॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और

ते	=	वे दोनों उपनय और निगमन
तत्-	=	उसके [अनुमान के]
अंगे	=	अंग
न	=	नहीं है।
साध्यधर्मिणि	=	साध्यधर्मी में
हेतुसाध्ययोः	=	हेतु और साध्य के
वचनात्	=	वचन से
एव	=	ही
असंशयात्	=	संशय नहीं रहता।

Meaning :-

These (Upanaya and Nigamana) are not Parts of that (Anumāna) because by mentioning the sādhya and the Hetu in the Dharmi containing the Sādhya no doubt exists.

सूत्रार्थ :-

उपनय और निगमन अनुमान के अंग नहीं है क्योंकि हेतु और साध्य के बोलने से ही संशय नहीं रहता है।

❖ उपनय और निगमन के स्वरूप का वर्णन आगे करेंगे।

❖ इस सूत्र में यह बताया गया है कि उपनय और निगमन भी अनुमान प्रयोग के लिए आवश्यक अवयव नहीं है। अर्थात् उपनय और निगमन के प्रयोग के बिना भी हेतु (साधन) और साध्य का सम्बन्ध दिखा देने से धर्मी में संशय दूर हो जाता है।

समर्थन ही हेतु का श्रेष्ठ रूप –

''समर्थनं वा वरं हेतुरूपमनुमानावयवो वास्तु साध्ये तदुपयोगात्''

॥41॥

अन्वयार्थ :-

समर्थनम्	=	समर्थन ही
वा	=	ही
हेतुरूपम्	=	हेतु का स्वरूप
वरम्	=	उत्कृष्ट [वास्तविक] है
अनुमानावयवः	=	अनुमान का अंङ्ग
वा	=	निश्चित
अस्तु	=	होवे
साध्ये	=	साध्य की सिद्धि में
तद्-उपयोगात्	=	उसका उपयोग होने से

Meaning :-

(The establishment e.g. fire) is got from the support of the limb of Anumāna named Hetu (e.g. smoke) as this (Hetu e.g. smoke) is connected with the Sādhya (e.g. fire)

सूत्रार्थ :-

समर्थन ही हेतु का वास्तविक स्वरूप है, अतः वही अनुमान का अवयव माना जाए, क्योंकि साध्य की सिद्धि में उसी का उपयोग होता है।

❖ आचार्य देव यहाँ पर बौद्धों का यह कहना स्वीकारते हैं कि – हेतु का समर्थन (दोहराना) अवश्य करना चाहिए। यह समर्थन ही हेतु का वास्तविक रूप है। इसे अनुमान का अवयव मानना चाहिए।

❖ इस सूत्र में एक तरह से आचार्य देव उपनय (हेतु का समर्थन) को अनुमान का अंग स्वीकार कर रहे हैं।

❖ इसीलिए अगले सूत्र में दृष्टान्त, उपनय, निगमन को भी किसी विवक्षा से अनुमान के अंग स्वीकार करेंगे।

उदाहरण, उपनय, निगमन का प्रयोग कथञ्चित् ठीक है -

''बालव्युत्पत्त्यर्थं तत्त्रयोपगमे शास्त्रे एवासौ न वादेऽनुपयोगात्''
।।42।।

अन्वयार्थ :-

बाल-	=	मंदबुद्धि वाले को
व्युत्पत्त्यर्थम्	=	ज्ञान कराने के लिए
तत्-	=	उन
त्रय-	=	तीन [उदाहरण, उपनय, निगमन की]
उपगमे	=	स्वीकारता होने पर
शास्त्रे	=	शास्त्र में
एव	=	ही
असौ	=	वह है।
वादे	=	वाद में
न	=	नहीं
अनुपयोगात्	=	उपयोग में न होने से।

Meaning :-

These (Driṣṭānta) etc. may be for understanding of those who have little knowledge and for this purpose may be discussed only in the Sastrā, but these are quite

unfit to be used in logical discussions.

सूत्रार्थ :-

मंदबुद्धि वाले बालकों को व्युत्पन्न करने के लिए उन उदाहरणादि तीन अवयवों के मान लेने पर भी शास्त्र में ही उनकी स्वीकारता है। वादकाल में नहीं क्योंकि शास्त्रार्थ (वाद) में उनका उपयोग नहीं है।

❖ उदाहरण, उपनय और निगमन इन तीन अवयवों का प्रयोग शास्त्र के पठन-पाठन में ही किया जाता है क्योंकि मंदबुद्धि वाले जीवों के लिए इन तीनों अवयवों के माध्यम से सिद्धी करके समझाया जाता है। जैसे बच्चों को समझाना पड़ता है कि बच्चे देखो यहाँ धूम है इसलिए अग्नि है बाद में फिर कभी किसी पर्वत आदि में धूम दिखाकर उसे अग्नि का अनुमान करा करके रसोईघर का उदाहरण देकर समझाते हैं कि यहाँ भी धूम है इसलिए यहाँ पर अग्नि है। इस प्रकार ये तीनों अवयव शास्त्र के समय ही काम आते हैं। वाद-विवाद के समय तो शिष्यों को नहीं समझाया जाता।

❖ वाद विवाद के समय अल्पबुद्धि वालों को नहीं समझाया जाता है लेकिन जो पहले से व्युत्पन्न [पंडित] हैं उन्हीं को समझाया जाता है इसलिए वहाँ पर केवल पक्ष और हेतु इन दोनों का ही कथन करना पर्याप्त होता है।

दृष्टान्त के भेद

''दृष्टान्तो द्वेधा अन्वयव्यतिरेकभेदात्'' ।।43।।

अन्वयार्थ :-

दृष्टान्तः	=	दृष्टान्त
द्वेधा	=	दो प्रकार का है।
अन्वय-	=	अन्वय और
व्यतिरेक-	=	व्यतिरेक के

भेदात् = भेद से

Meaning :-

The Dristānta is of two kinds, being with Anvaya and Vyatireka.

सूत्रार्थ :-

दृष्टान्त दो प्रकार का है अन्वय और व्यतिरेक

❖ बाल बुद्धि वालों को समझाने के लिए जो दृष्टांत, उपनय और निगमन तीन अवयव शास्त्र में उपयोग किये जाते हैं। यहाँ पर क्रमशः इन तीनों का वर्णन किया जायेगा।

❖ अन्वय दृष्टान्त को साधर्म्य दृष्टान्त भी कहते है।

❖ व्यतिरेक दृष्टान्त को वैधर्म्य दृष्टान्त भी कहते है।

अन्वयदृष्टान्त का स्वरूप

''साध्यव्याप्तं साधनं यत्र प्रदर्श्यते सोऽन्वयदृष्टान्तः'' ॥44॥

अन्वयार्थ :-

साध्यव्याप्तम्	=	साध्य से व्याप्त
साधनम्	=	साधन को
यत्र	=	जहाँ
प्रदर्श्यते	=	दिखाया जाता है
सः	=	वह
अन्वयदृष्टान्तः	=	अन्यव दृष्टान्त है।

Meaning :-

Where the Sādhana is shown as always concomitant with Sādhya, that is (an example) of

Anvaya Dristānta.

सूत्रार्थ :-

जहाँ साधन की साध्य के साथ व्याप्ति दिखलाई जाती है वह अन्वय दृष्टान्त है।

❖ जहाँ पर धुँआ है वहाँ पर अग्नि है जैसे कि रसोईघर। इस रसोईघर के दृष्टान्त में साध्य अग्नि है और साधन धुँआ है। चूंकि यहाँ साधन के सद्भाव में साध्य का सद्भाव दिखाया गया है इसलिए यह अन्वय दृष्टान्त है।

व्यतिरेक दृष्टान्त का स्वरूप और लक्षण

''साध्याभावे साधनाभावो यत्र कथ्यते स व्यतिरेकदृष्टान्तः'' ॥45॥

अन्वयार्थ :-

साध्याभावे	=	साध्य के अभाव में
साधनाभावः	=	साधन का अभाव
यत्र	=	जहाँ
कथ्यते	=	कहा जाता है
सः	=	वह
व्यतिरेक दृष्टान्तः	=	व्यतिरेक दृष्टान्त है

Meaning :-

Where the absence of Sādhana is mentioned through the absence of Sādhya, that is (an example) of Vyatireka Dristānta

सूत्रार्थ :-

जहाँ पर साध्य के अभाव में साधन का अभाव कहा जावे वह व्यतिरेक दृष्टान्त है। –

❖ व्यतिरेक दृष्टांत में साध्य और साधन का संबंध नकारात्मक [Negatively] दिखया जाता है।

❖ व्यतिरेक दृष्टांत की यह विशेषता होती है कि इसमें साध्य भी नहीं के साथ प्रयुक्त होता है और साधन भी नहीं के साथ प्रयुक्त होता है अर्थात् साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाना।

❖ जैसे– जहाँ अग्नि नहीं है वहाँ पर धुँआ नहीं है। जैसे कि यह पर्वत।

इसलिए यह पर्वत व्यतिरेक दृष्टान्त है।

उपनय का लक्षण

"हेतोरुपसंहार उपनयः" ॥46॥

अन्वयार्थ :-

हेतोः	=	हेतु का
उपसंहार	=	उपसंहार
उपनयः	=	उपनय है।

Meaning :-

Upanaya is the application (asserting the existence) of the Hetu (in the Dharmi after a knowledge of concomitance)

सूत्रार्थ :-

हेतु का उपसंहार उपनय है।

❖ अविनाभाव संबंध का धर्मी में ज्ञान हो जाने के बाद अंत में उसे पुनः दोहराना उपनय है जैसे कि "उसी प्रकार यह पर्वत धूमवाला है" यह हेतु का दुहराना कहलाता है।

निगमन का लक्षण

"प्रतिज्ञायास्तु निगमनम्" ॥47॥

अन्वयार्थ :-

तु	=	और
प्रतिज्ञायाः	=	प्रतिज्ञा का उपसंहार
निगमनम्=		निगमन है।

Meaning :-

Nigamana is the (conclusion) of the Pratijnā.

सूत्रार्थ :-

प्रतिज्ञा के दोहराने को निगमन कहते है।

❖ पक्ष को ही प्रतिज्ञा कहते हैं। जिसे हमने प्रारंभ में सिद्ध करना चाहा था।

❖ जैसे गणित में प्रतिज्ञा की जाती है "To prove that" फिर अंत में conclusion निष्कर्ष लिखा जाता है। उसी प्रकार से न्याय में अनुमान से सिद्धि होने के बाद उपनय कहकर प्रतिज्ञा को दोहराना निगमन कहलाता है जैसे कि "इसलिए यह पर्वत भी अग्निवाला है।"

❖ यहाँ तक प्रतिज्ञा, हेतु, दृष्टान्त, उपनय और निगमन इन पाँचों अनुमान के अंगों का वर्णन पूरा हुआ।

अनुमान के भेद

"तदनुमानं द्वेधा" ॥48॥

अन्वयार्थ :-

तत्–	=	वह
अनुमानम्	=	अनुमान

द्वेधा = दो प्रकार का है।

Meaning :-

This Anumāna is of two kinds.

सूत्रार्थ :-

वह अनुमान दो प्रकार का है।

अनुमान के दो भेदों के नाम

''स्वार्थपरार्थभेदात्'' ॥49॥

अन्वयार्थ :-

स्वार्थ- = स्वार्थ और

परार्थ- = परार्थ के

भेदात् = भेद से हैं।

Meaning :-

Svārtha & (and) Parārtha.

सूत्रार्थ :-

स्वार्थ और परार्थ के भेद से अनुमान के 2 भेद हैं।

स्वार्थ अनुमान का लक्षण

''स्वार्थमुक्तलक्षणम्'' ॥50॥

अन्वयार्थ :-

स्वार्थम् = स्वार्थ का

लक्षणम् = लक्षण/ स्वरूप

उक्तम् = कहा गया है।

Meaning :-

Svārtha (Anumāna) has already been defined.

सूत्रार्थ :-

स्वार्थानुमान का लक्षण कहा जा चुका है।

❖ ''साधनात्साध्यविज्ञानमनुमानं'' तीसरे अध्याय के 10 वे सूत्र में जो अनुमान का लक्षण पहले कहा था। वही स्वार्थ अनुमान का लक्षण है।

❖ यह स्वार्थ अनुमान दूसरे के उपदेश बिना स्वतः ही होता है।

❖ जैसे पहले कभी किसी ने रसोई घर में अग्नि देखी और धुँआ भी देखा बाद में उसे किसी अन्य पर्वत आदि पर धुँआ देखकर स्वयं ही पूर्व में देखे गये धुंए एवं अग्नि के संबंध से वह जान लेता है कि इस पर्वत पर भी अग्नि है, यह स्वार्थ अनुमान है।

परार्थ अनुमान का लक्षण

''परार्थं तु तदर्थ-परामर्शिवचनाज्जातम्'' ॥51॥

अन्वयार्थ :-

तु = परन्तु

परार्थम् = परार्थानुमान

तत्- = उस स्वार्थानुमान के विषयभूत

अर्थ- = पदार्थ का

परामर्शि- = परामर्श करने वाले

वचनात्- = वचनों से

जातम् = उत्पन्न होता है।

Meaning :-

Parārtha (Anumāna) arises from words touching

that (Svārthānumāna)

सूत्रार्थ :-

उस स्वार्थ अनुमान के विषयभूत पदार्थ का परामर्श करने वाले वचनों से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे परार्थ अनुमान कहते हैं।

❇ दूसरों के वचनों के माध्यम से जब अविनाभाव संबंध का ज्ञान कराया जाता है तो उन वचनों से उत्पन्न हुआ ज्ञान परार्थ अनुमान होता है।

❇ धुंए से अग्नि का अनुमान लगाया जाता है, इस प्रकार स्वार्थ अनुमान को विषय करने वाले [परामर्शि] वचनों से जो अग्नि का ज्ञान होता है वह परार्थ अनुमान है।

❇ स्वार्थ अनुमान किसी के वचनों से नहीं होता और परार्थ अनुमान किसी के वचन [उपदेश] से होता है यही इन दोनों में अंतर है।

वचन भी परार्थ अनुमान में कारण हैं

"तद्वचनमपि तद्धेतुत्वात्" ॥52॥

अन्वयार्थ :-

तत्-	=	परार्थानुमान के प्रतिपादक
वचनम्	=	वचन
अपि	=	भी
तद्	=	परार्थानुमान का
हेतुत्त्वात्	=	कारण होने से

Meaning :-

The words expressing this (Parārthānumāna) is also Parārthānumāna as these (words) are the cause of that (knowledge arising in Parārthānumāna).

सूत्रार्थ :-

परार्थ अनुमान का कारण होने से परार्थ अनुमान को कहने वाले वचन भी परार्थ अनुमान कहलाते हैं।

❇ यहाँ पर वचन को परार्थ अनुमान का कारण बताया है।

❇ अनुमान ज्ञान में वचन [उपदेश] कारण होते हैं, इसलिए कारण में [ज्ञान रूप] कार्य का उपचार करके यहाँ पर वचनों को परार्थ अनुमान स्वीकारा है।

❇ 48 से लेकर 52 सूत्र तक अनुमान के भेदों का प्रकरण पूरा हुआ।

हेतु के भेद

"स हेतुर्द्वेधोपलब्ध्यनुपलब्धिभेदात्" ॥53॥

अन्वयार्थ :-

सः	=	वह
हेतुः	=	हेतु
द्वेधा	=	दो प्रकार का है
उपलब्धि-	=	उपलब्धि और
अनुपलब्धि-	=	अनुपलब्धि के
भेदात्	=	भेद से।

Meaning :-

That Hetu is of two kinds. : Upalabdhi and Anupalabdhi.

सूत्रार्थ :-

अविनाभाव लक्षण वाला वह हेतु दो प्रकार का है

1. उपलब्धि 2. अनुपलब्धि के भेद से

उपलब्धि अनुपलब्धि हेतु के भेद

''उपलब्धिर्विधिप्रतिषेधयोरनुपलब्धिश्च'' ॥54॥

अन्वयार्थ :-

उपलब्धिः	=	उपलब्धि
विधिप्रतिषेधयोः	=	विधि और प्रतिषेध के भेद से है
च	=	और
अनुपलब्धिः	=	अनुपलब्धि भी

Meaning :-

Upalabdhi is subdivided into vidhi and Pratiṣedha. Anupalabdhi also (is subdivided into the same two kinds)

सूत्रार्थ :-

उपलब्धि रूप हेतु विधि और प्रतिषेध दोनों को बताता है उसी प्रकार अनुपलब्धि रूप हेतु भी विधि और प्रतिषेध दोनों को बताता है।

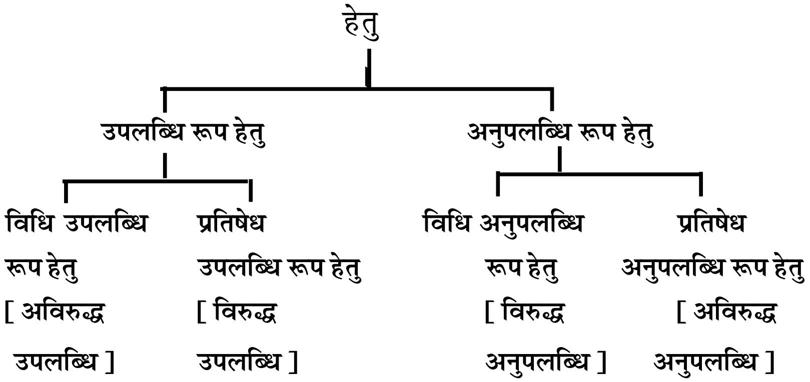

अविरुद्ध उपलब्धि के भेद

''अविरुद्धोपलब्धिर्विधौ षोढा-व्याप्यकार्यकारणपूर्वोत्तर- सहचर -

भेदात्'' ॥55॥

अन्वयार्थ :-

अविरुद्धोपलब्धिः	=	अविरुद्धोपलब्धि
विधौ	=	विधि में [साधन दशा में]
षोढा	=	छह प्रकार की है।

व्याप्य- कार्य-कारण-पूर्व-उत्तर-चर-सहचर-भेदात्- = व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर, के भेद से।

Meaning :-

Aviruddha Upalabdhi is of six kinds in vidhi viz. Vyāpya, Kārya, Kārarṇa, Pūrvachara, Uttarachara and Sahachara.

सूत्रार्थ :-

अविरुद्ध उपलब्धि के विधि में 6 भेद हैं। व्याप्य, कार्य, कारण, पूर्वचर, उत्तरचर और सहचर

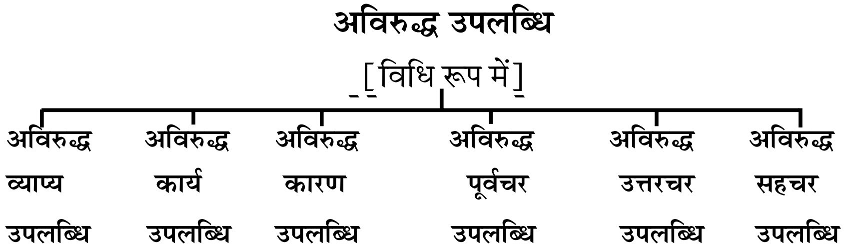

बौद्धों ने भी कारण रूप हेतु को माना है

''रसादेकसामग्रयनुमानेन रूपानुमानमिच्छद्भिरिष्टमेव किञ्चित्कारणं हेतुर्यत्र सामर्थ्याप्रतिबन्ध-कारणान्तरा-वैकल्ये'' ॥56॥

अन्वयार्थ :-

रसात्	=	इस से
एक-	=	एक
सामग्री-	=	सामग्री के
अनुमानेन	=	अनुमान द्वारा
रूपानुमानम्	=	रूप का अनुमान
इच्छद्भिः	=	स्वीकार करने वालों को
किञ्चित् कारणम्	=	कोई विशिष्ट कारण रूप
हेतुः	=	हेतु
इष्टम्	=	इष्ट
एव	=	ही है।
यत्र	=	जिसमें
सामर्थ्य-	=	सामर्थ्य की
अप्रतिबंध-	=	रुकावट नहीं है और
कारणान्तरा-	=	दूसरे कारणों की
अवैकल्ये	=	विकलता (कभी)नहीं है।

Meaning :-

From Rasa (juice), One thing is inferred and from that, Rūpa (form)is inferred. Those who, accept this, accept also some Kāraṇa as Hetu where there is no other Kāraṇa to obstract the potency of [the Kāraṇa or cause].

सूत्रार्थ :-

रस से एक सामग्री के अनुमान द्वारा रूप का अनुमान स्वीकार करने वाले

बौद्धों ने कोई कारण रूप हेतु माना ही है जिसमें की सामर्थ्य का प्रतिबंध नहीं और दूसरे साधनों की विकलता [अभाव] नहीं है।

❖ बौद्ध लोग केवल स्वभाव हेतु और कार्य हेतु को ही विधि रूप में मानते हैं। जबकि यहाँ पर आचार्य देव ने विधि के 6 भेदों में कारण रूप हेतु भी बताया है। इसी बात का समर्थन बौद्धों के द्वारा ही माने हुए सूत्र में कहे गये दृष्टान्त से किया है।

❖ बौद्धों के द्वारा मान्य दृष्टान्त यह है कि किसी व्यक्ति ने गहन अंधकार में आम को चखा और वह उसके मीठे रस के स्वाद से विचारता है कि इसका रूप पीला होना चाहिए। इस प्रकार बौद्ध रस से एक सामग्री के अनुमान द्वारा रूप का अनुमान करते है, इसलिए उन्हीं की मान्यता से यह सिद्ध होता है कि उन्होंने भी कारण रूप हेतु को माना है। इसलिए वे यह नहीं कह सकते कि विधि उपलब्धि में कारण रूप हेतु नहीं होता है।

❖ उस हेतु की दो विशेषताएँ होनी चाहिए। 1. उस हेतु की शक्ति का प्रतिबन्ध (रुकावट) न हो, 2. अन्य सहायक कारणों की कमी न हो।

❖ घड़ा बनाते समय चाक की कीली को रोक देना शक्ति का प्रतिबन्ध करना है और डण्डा आदि नहीं होना यह अन्य कारणों की कमी है।

❖जिस कारण में ये दोनों बातें न हो वह कारण अवश्य कार्य को उत्पन्न करता है। यह तात्पर्य है।

पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भी भिन्न हैं

"न च पूर्वोत्तरचारिणोस्तादात्म्यं तदुत्पत्तिर्वा कालव्यवधाने तदनुपलब्धेः" ॥57॥

अन्वयार्थ :-

पूर्वोत्तरचारिणोः	=	पूर्वचर और उत्तरचर का
तादात्म्यम्	=	तादात्म्य संबंध

न च	=	नहीं है
वा	=	तथा
तदुत्पत्तिः	=	तदुत्पत्ति भी नहीं है।
कालव्यवधाने	=	काल का व्यवधान होने पर
तत्-	=	उन दोनों संबधों की
अनुपलब्धेः	=	उपलब्धि नहीं होने के कारण

Meaning :-

In the case of antecedence and consequence, these after an interval of time.

सूत्रार्थ :-

पूर्वचर और उत्तरचर हेतुओं का साध्य के साथ तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है। तथा तदुत्पत्ति सम्बन्ध भी नहीं है क्योंकि ये दोनों सम्बन्ध काल के व्यवधान के साथ नहीं होते हैं।

❖ यह सूत्र किसलिए आया है, यह पहले समझ लें।

❖ बौद्ध लोग पूर्वचर और उत्तरचर हेतु भिन्न नहीं मानते हैं। वह मानते हैं कि स्वभाव हेतु में ही इसका अन्तर्भाव हो जाता है।

❖ बौद्ध लोग विधि में स्वभाव हेतु और कार्य हेतु दो ही मानते है। इसी धारणा का खण्डन करते हुए यहाँ आचार्य देव ने कहा है कि पूर्वचर और उत्तरचर दोनों हेतु भिन्न-भिन्न हैं। इनमें न तो तादात्म्य सम्बन्ध होता है और न तदुत्पत्ति सम्बन्ध होता है तादात्म्य सम्बन्ध नहीं है, ऐसा कहकर बौद्धों द्वारा मान्य स्वभाव हेतु में इन दोनों हेतुओं का अन्तर्भाव नहीं होता है, यह स्पष्ट किया है। एक बात और याद रखें कि तादात्म्य सम्बन्ध ही स्वभाव सम्बन्ध (हेतु) है।

❖ इसी प्रकार 'तदुत्पत्ति सम्बन्ध' भी नहीं है, ऐसा कहकर कार्य हेतु में अन्तर्भाव नहीं होता है, यह स्पष्ट किया है क्योंकि तदुत्पत्ति सम्बन्ध के साथ ही

कार्य-कारण सम्बन्ध होता है।

❖अभिन्न पदार्थों का गुण-गुणी का सम्बन्ध तादात्म्य सम्बन्ध है। जैसे आत्मा और ज्ञान का, पुद्गल और रूप-रस का, अग्नि और उष्णता का।

❖ एक पदार्थ से दूसरे पदार्थ की उत्पत्ति में तदुत्पत्ति सम्बन्ध होता है। जैसे कुम्हार का घड़ा बनाना, अग्नि से भोजन पकना आदि।

❖ प्रासंगिक पूर्वचर, उत्तरचर सम्बन्ध इन तादात्म्य और तदुत्पत्ति दोनों सम्बन्धों में अन्तर्भूत नहीं होते है।

❖ पूर्वचर, उत्तरचर हेतु इन तादात्म्य और तुदत्पत्ति में गर्भित नहीं होते इसका कारण है कि, पूर्वचर, उत्तरचर सम्बन्ध में काल का व्यवधान होता है जबकि तादात्म्य और तदुत्पत्ति में नहीं।

❖ एक मुहूर्त के बाद रोहिणी नक्षत्र का उदय होगा, क्योंकि अभी कृत्तिका नक्षत्र का उदय चल रहा है, यह पूर्वचर हेतु का उदाहरण है क्योंकि यहाँ अन्तर्मुहूर्त काल का व्यवधान है। इसे तदुत्पत्ति हेतु में गर्भित नहीं कर सकते हैं क्योंकि तदुत्पत्ति में काल का व्यवधान नहीं है। इसी तरह कल रविवार होगा क्योंकि आज शनिवार है इस पूर्वचर हेतु के उदाहरण में भी 24 घंटे काल का व्यवधान है। इसी तरह उत्तरचर हेतु के विषय में समझना।

❖ इस सूत्र में यह स्पष्ट किया है कि पूर्वचर, उत्तरचर हेतु भिन्न स्वरूप वाले हैं, उनका किसी अन्य हेतु में अन्तर्भाव नहीं किया जा सकता है।

कालव्यवधान के विषय में बौद्धों की शंका और उसका निराकरण

''भाव्यतीतयोर्मरणजाग्रद् बोधयोरपि नारिष्टोद्बोधौ प्रतिहेतुत्वम्''

॥ 58 ॥

अन्वयार्थ :-

भाव्यतीतयोः	=	भावी और अतीत के
मरण-	=	मरण और
जाग्रद्-	=	सोने से पूर्व की अवस्था
बोधयोः	=	दोनों ज्ञानों का
अपि	=	भी
अरिष्ट उद्बोधौ	=	अपशकुन और ज्ञान के
प्रतिहेतुत्वम्	=	प्रति हेतुपना
न	=	नहीं है

Meaning :-

The future and the past, death and the knowledge of waking are not the causes of Ariṣṭas (omens of death) or of rising (in the morning).

सूत्रार्थ :-

भावी मरण और अतीत जाग्रद् बोध के भी अपशकुन और उद्बोध के प्रति कारणपना नहीं है।

❖ सूत्र में पदों का सम्बन्ध लगाएँ। इसमें तीन समास पद हैं।

भावी - अतीतयोः, मरण - जाग्रद्बोधयोः, न अरिष्ट- उद्बोधौ

❖ तीनों पद के प्रथम पद को क्रम से लगाने पर एक उदाहरण बनता है -

भावि - मरण - न अरिष्ट अर्थात् भावी काल में होने वाले मरण में अरिष्ट (अपशकुन) कारण नहीं है।

अतीत - जाग्रद्बोध - न उद्बोध अर्थात् अतीत काल में जाग्रत समय का ज्ञान उद्बोध (पुनः जागने पर होने वाले ज्ञान) में कारण नहीं है।

❖ अभिप्राय यह है कि -

1. पहले किसी को अपशकुन हुआ, मान लो कहीं जाते समय बिल्ली रास्ता काट गई तो इस अपशकुन के बाद आगामी काल में किसी का मरण हुआ या नहीं हुआ, कोई नियामकता तो है नहीं इसलिए अपशकुन और मरण का कारण-कार्य सम्बन्ध नहीं बनता है। अपशकुन और मरण के बीच काल का व्यवधान भी है, जो कार्य-कारण सम्बन्ध (तदुत्पत्ति सम्बन्ध) में बाधक है।

2. इसी प्रकार कोई व्यक्ति अतीत में अर्थात् पिछली रात्रि में सोते समय जो ज्ञान किए था वही ज्ञान प्रातःकाल जाग्रत होने पर हुए सुबह के ज्ञान का कारण है। यहाँ भी रात्रि और सुबह के बीच काल व्यवधान होने से कारण-कार्य भाव नहीं बनता है।

❖ 'काल व्यवधान भी कारण-कार्य सम्बन्ध बनाता है' ऐसी बौद्धों की मान्यता है और उनका ही दिया हुआ उदाहरण इस सूत्र में दिया गया है तथा ये उदाहरण कारण-कार्य सम्बन्ध में घटित नहीं होते हैं, यह भी इसी सूत्र में कहा गया है।

कारण-कार्य का सम्बन्ध

"तद्व्यापाराश्रितं हि तद्भावभावित्वम्" ॥59॥

अन्वयार्थ :-

तद्	=	उस कारण के
व्यापार-	=	व्यापार के
आश्रितम्	=	आश्रित
हि	=	ही
तद्भाव-भावित्वम्	=	कार्य का व्यापारपना है।

Meaning :-

Because that (Karya) happens with the existence of that (Karaṇa) as that is connected with this.

सूत्रार्थ :-

कारण के व्यापार के आश्रित ही कार्य का व्यापार हुआ करता है।

❈ कारण के सद्भाव में कार्य का होना तद्भावभावित्व कहलाता है।

❈ पिछले सूत्र में दिये गये उदाहरण में कारण के व्यापार के आश्रित कार्य नहीं हुआ इसलिए उसमें कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं है।

सहचारी हेतु भी भिन्न है

''सहचारिणोरपि परस्परपरिहारेणावस्थानासहोत्पादाच्च'' ॥ 60 ॥

अन्वयार्थ :-

सहचारिणः	=	सहचारी पदार्थ का
अपि	=	भी
परस्पर-परिहारेण	=	परस्पर के परिहार के साथ
अवस्थानात्	=	अवस्थान होने से
च	=	और
सहोत्पादात्	=	एक साथ उत्पन्न होने से

Meaning :-

Co-existence (is also a separate Hetu) because the things exist independently of each other and arise together.

सूत्रार्थ :-

सहचारी पदार्थ भी परस्पर के परिहार से रहते हैं और वे एक साथ उत्पन्न होते हैं।

❈ परस्पर परिहार से तात्पर्य परस्पर में भिन्नता से है।

❈ सहचारी हेतु भी पूर्वचर, उत्तरचर की तरह भिन्न हेतु है।

❈ सहचारी हेतु का अन्तर्भाव भी स्वभाव हेतु में नहीं हो सकता है क्योंकि सहचारी हेतु परस्पर में परिहार से रहते हैं। और कार्य-कारण हेतु में भी अन्तर्भाव नहीं होता है क्योंकि वे एक साथ उत्पन्न होते हैं।

❈ सहचारी हेतु की दो विशेषताएँ इस सूत्र में दर्शायी गई हैं।

1. परस्पर में भिन्नता के साथ रहना या भिन्न स्थान में रहना।
2. साथ में उत्पत्ति होना

*** सहचर हेतु के उदाहरण -**

1. गाय के दोनों सींग
2. रूप, रस आदि का पुद्गल में उत्पन्न होना
3. मतिज्ञान, श्रुतज्ञान का साथ रहना
4. सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान का साथ रहना।

1. अविरुद्ध व्याप्य उपलब्धि हेतु का उदाहरण एवं अनुमान के पाँच अवयवों का दिग्दर्शन

''परिणामी शब्दः कृतकत्वात् य एवं, स एवं दृष्टो, यथा घटः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामीति यस्तु न परिणामी स न कृतको दृष्टो यथा वन्ध्यास्तनन्धयः कृतकश्चायं तस्मात्परिणामी'' ॥ 61 ॥

शब्दः	=	शब्द
परिणामी	=	परिणमनशील है
कृतकत्वात्	=	किया जाने वाला होने से
यः	=	जो
एवं	=	इस प्रकार है
सः	=	वह

एवं	=	इसी प्रकार
दृष्टः	=	देखा जाता है
यथा	=	जैसे
घटः	=	घड़ा
कृतकः	=	किया जाने वाला है
च	=	और
अयम्	=	यह
तस्मात्	=	इसलिए
परिणामी	=	परिणमन वाला है
इति	=	इस प्रकार
तु	=	परन्तु
यः	=	जो
परिणामी	=	परिणमन वाला
न	=	नहीं है
सः	=	वह
कृतकः	=	किया जाने वाला
न	=	नहीं है
दृष्टः	=	देखा गया है
यथा	=	जैसे
वन्ध्या-	=	बन्ध्या का
स्तनन्धयः	=	पुत्र
कृतकः	=	किया गया है
च	=	और

अयम्	=	यह
तस्मात्	=	इसलिए
परिणामी	=	परिणमन वाला है।

Meaning

Sound is subject to modification because it is a product.

All products are seen as liable to modification. e.g. a pitcher.

This is a product, so this is subject to modification.

That which is not a product is not seen as liable to modifications as the son of a barren woman.

This is a product, so this is subject to modification.

सूत्रार्थ :-

शब्द परिणामी है [प्रतिज्ञा], क्योंकि वह कृतक है [हेतु]। जो कतक होता है, वह परिणामी देखा जाता है, जैसे घट [अन्वय दृष्टान्त]। चूंकि यह शब्द कृतक है [उपनय] इसलिए परिणामी है [निगमन] जो परिणामी नहीं होता, वह कृतक भी नहीं देखा जाता है जैसे कि बन्ध्या का पुत्र [व्यतिरेक दृष्टान्त] चूंकि यह शब्द कृतक है [उपनय] अतः परिणामी है[निगमन]।

❖ इस सूत्र में शब्द परिणामी है क्योंकि कृतक है, यह अविरुद्ध व्याप्य उपलब्धि का उदाहरण है।

❖ जो अल्प देश में रहे वह व्याप्य और जो सर्व देश में रहे वह व्यापक होता है।

❖ इस उदाहरण में 'कृतक' हेतु व्याप्य है क्योंकि कृतक अर्थात् किसी का किया हुआ या बनाया हुआ, यह हेतु मात्र पुद्गल द्रव्य में ही रहता है तथा परिणामीपना सभी द्रव्यों में पाया जाता है इसलिए व्यापक है।

❇ इसी सूत्र में अनुमान के पाँचों अंगों को शास्त्र में कैसे प्रयुक्त किया जाता है यह भी दिखलाया है।

2.अविरुद्धकार्योपलब्धि का उदाहरण

"अस्त्यत्र देहिनि बुद्धि र्व्याहारादेः" ॥62॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इस
देहिनि	=	प्राणी में
बुद्धिः	=	बुद्धि
अस्ति	=	है
व्याहारादेः	=	वचनादि होने से

Meaning:-

There is intelligence in this animal as it shows activities like speech etc.

सूत्रार्थ :-

इस देही [शरीर-धारक प्राणी] में बुद्धि है, क्योंकि बुद्धि के कार्य वचनादिक पाये जाते हैं।

❇ यहाँ व्याहार के साथ आए आदि शब्द से उस प्राणी के शरीर के अंगों की प्रवृत्ति और आकार विशेष आदि का भी ग्रहण करना चाहिए।

❇ चूँकि यह अविरुद्ध कार्य उपलब्धि रूप विधि साधक हेतु का उदाहरण है इसलिए हेतु पर ही विचार करना है।

❇ हेतु को संस्कृत में पञ्चमी विभक्ति में लिखा जाता है। सूत्र में हेतु प्रयोग अन्त में किया जाता है।

❇ 'व्याहारादेः' यह हेतु पद है।

❇ बुद्धि साध्य है।

❇ यह हेतु कार्य-रूप है क्योंकि प्राणी में बुद्धि है, यह बात सिद्ध करने के लिए यह हेतु दिया गया है और सभी जानते हैं कि बुद्धि के कार्य ही वचन व्यापार होते हैं। व्याहार शब्द मुख्य रूप से वचन चातुर्य को बताता है।

❇ चूँकि वचन चातुर्य आदि क्रिया-कलापों से प्राणी में बुद्धि है, यह सिद्ध होता है इसलिए यह हेतु अविरुद्ध (विना विरोध के) कार्य की उपलब्धि (प्राप्ति) कराता है।

❇ अविरुद्ध उपलब्धि - विधि (सकारात्मक) वाक्यों में होती है जो 'अस्ति' क्रिया पद से जानी जाती है। सर्वत्र 'अस्ति' पद से इसी तरह पहचान कर लेना।

अन्य उदाहरण -

❇ अस्त्यत्राग्नि र्धूमात्।

यहाँ अग्नि है धूम होने से।

❇ अस्त्यत्र वायुः केतुचलनात्।

यहाँ हवा है क्योंकि ध्वजा हिल रही है।

❇ अस्त्यत्र महोत्सवः सम्मर्ददर्शनात्।

यहाँ महोत्सव है क्योंकि भीड़ दिखाई दे रही है।

3. अविरुद्ध कारण उपलब्धि हेतु का उदाहरण -

"अस्त्यत्रच्छाया छत्रात्" ॥63॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इसमें
छाया	=	छाया
अस्ति	=	है

छत्रात् = छत्र होने से

Meaning:-

There is shade here, as there is an umbrella.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर छाया है क्योंकि छत्र पाया जाता है।

❖ 'छत्रात्' हेतु है।

❖ 'छाया' साध्य है।

❖ छाया होने में छत्र कारण होता है। इसलिए यहाँ छत्र रूप हेतु अविरुद्ध कारण-उपलब्धि रूप है।

❖ अन्य उदाहरण :-

1. अस्त्यत्र प्रकाशः सूर्योदयात्।
   यहाँ प्रकाश है, सूर्योदय होने से।
2. अस्त्यस्य संसारः कर्मोदयात्।
   इसका संसार है, कर्मोदय होने से।
3. अस्ति अस्मिन् आत्मनि शोके मातृवियोगात्।
   इस आत्मा में शोक है, माता का वियोग होने से।

4-अविरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण

"उदेष्यति शकटं कृत्तिकोदयात्" ॥64॥

अन्वयार्थ :-

शकटं = रोहिणी का

उदेष्यति = उदय होगा

कृत्तिका = कृत्तिका नक्षत्र का

उदयात् = उदय होने से

Meaning:-

The Rohiṇi [constellation] will appear [after a muhūrta] as the krittikā [constellation] has arisen.

सूत्रार्थ :-

एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी का उदय होगा क्योंकि अभी कृत्तिका नक्षत्र का उदय हो रहा है।

❖ प्रत्येक नक्षत्र का उदय अन्तर्मुहुर्त रहता ही है इसलिए इतना काल का व्यवधान प्रत्येक नक्षत्र के उदय-अस्त में जोड़ना।

❖ शकट - रोहिणी नक्षत्र को कहते हैं।

❖ 27 नक्षत्रों में प्रारम्भ के नक्षत्रों का क्रम इस प्रकार ध्यान रखें।

रेवती, अश्विनी, भरणी, कृत्तिका, रोहिणी, मृगशिरा, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य आदि।

❖ इनमें पूर्ववर्ती नक्षत्र पूर्वचर और आगे को उत्तरचर कहलाते हैं।

❖ 'कृत्तिकोदयात्' यह हेतु अविरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि का है। कृत्तिका नक्षत्र का उदय चल रहा है, इसके अन्तर्मुहुर्त बाद रोहिणी का उदय होगा इसलिए रोहिणी के लिए कृत्तिका पूर्वचर हुआ।

❖ अन्य उदाहरण :-

1. भविष्यति श्वः सोमवासरो रविवारोदयात्।
   कल सोमवार होगा, आज रविवार होने से।
2. आगमिष्यति वर्षासमयो ग्रीष्मकालात्।
   वर्षा का समय आएगा, अभी ग्रीष्मकाल होने से।

5. अविरुद्ध उत्तरचर उपलब्धिरूप हेतु का उदाहरण

"उदगाद् भरणिः प्राक्तत् एव" ॥65॥

अन्वयार्थ :-

प्राक्	=	पहले
भरणिः	=	भरणि नक्षत्र का
उदगाद्	=	उदय हुआ था
ततः	=	कृत्तिका के उदय होने से
एव	=	ही

Meaning:-

The Bharaṇi had already risen before this.

सूत्रार्थ :-

भरणी का उदय एक मुहुर्त के पूर्व ही हो चुका है, क्योंकि कृत्तिका का उदय पाया जाता है ।

❖ वही कृत्तिका नक्षत्र अपने पिछले वाले नक्षत्र की अपेक्षा उत्तरचर है। यहाँ साध्य भरणि नक्षत्र है। इसका उदय पूर्व में हुआ तभी तो अभी कृत्तिका का उदय चल रहा है। इसलिए कृत्तिका नक्षत्र का उदय यहाँ अविरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि रूप हेतु है।

❖ तत एव - कृत्तिका का उदय होने से - यह साधन, हेतु है।

❖ भरणि का उदय हो चुका है - यह साध्य है।

❖ अन्य उदाहरण -

1. अभवत् शनिवासरो रविवारोदयात्।

शनिवार हो चुका है आज रविवार होने से ।

2. शीतकालो विगतो ग्रीष्मकालात्।

शीतकाल चला गया है, ग्रीष्मकाल चलने से।

6. अविरुद्ध सहचर उपलब्धि रूप हेतु का उदाहरण

"अस्त्यत्र मातुलिंगे रूपं रसात्" ॥66॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इस
मातुलिंगे	=	नींबू में
रूपं	=	रूप
अस्ति	=	है
रसात्	=	रस होने से

Meaning:-

There is colour in this Mātulinga (fruit) as there is juice. [in it].

सूत्रार्थ :-

इस मातुलिङ्ग [बिजौरा] में रूप है, क्योंकि उसका अविरोधी सहचर रस पाया जा रहा है। अतः यह अविरुद्धसहचरोपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

❖ रूप और रस साथ-साथ पाए जाते है इसलिए यह विधि में अविरुद्ध सहचर उपलब्धि रूप हेतु का उदाहरण है।

❖ रसात् - हेतु है।

❖ रूपम् अस्ति - साध्य है।

अन्य उदाहरण -

1. अस्ति आत्मनि ज्ञानं दर्शनात्।

आत्मा में ज्ञान है, दर्शन होने से।

2. अस्ति सर्वज्ञता केवलिनि केवलज्ञानात्।

केवली भगवान में सर्वज्ञता है, केवलज्ञान होने से।

3. अस्ति कानने रामः लक्ष्मणसद्भावात्।

जंगल में राम हैं लक्ष्मण होने से।

विरुद्ध उपलब्धि कैसे होती है –

''विरुद्धतदुपलब्धिः प्रतिषेधे तथा'' ॥67॥

अन्वयार्थ :-

विरुद्धतदुपलब्धिः	=	विरुद्धतद्पलब्धि भी
प्रतिषेधे	=	प्रतिषेध करने वाली है
तथा	=	उसी प्रकार [6 भेद वाली है]

Meaning:-

Viruddha Upalabdhi is also the same. [i.e. of six varieties] implying a sādhya of a non-existent nature. [or which is refuted]

सूत्रार्थ :-

प्रतिषेध सिद्ध करनेवाली विरुद्धोपलब्धि के भी छह भेद है।

❇प्रतिषेध करने वाले वाक्यों में 'नास्ति' पद से उदाहरण का प्रयोग होता है। आगे के सूत्रों में दिखाया जाएगा कि विरुद्ध उपलब्धि के सभी वाक्य 'नास्ति' पद से प्रारम्भ होते है।

❇ अविरुद्ध उपलब्धि की तरह यह विरुद्ध उपलब्धि भी छह प्रकार की होती है।

1. विरुद्ध व्याप्य उपलब्धि हेतु का उदाहरण –

''नास्त्यत्र शीतस्पर्शः औष्ण्यात्'' ॥68॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इसमें

शीतस्पर्शः	=	शीत का स्पर्श
नास्ति	=	नहीं है।
औष्ण्यात्	=	उष्णता होने से

Meaning:-

There is no feeling of cold here, as it is hot.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर शीत स्पर्श नहीं है क्योंकि उष्णता पाई जाती है।

❇ औष्ण्यात्– हेतु है।

❇ शीत स्पर्श नहीं है – साध्य है।

❇ यहाँ उष्णता हेतु व्याप्य है।

❇ शीत स्पर्श का विरुद्ध साध्य अग्नि है और उष्णता अग्नि में व्याप्य रहने वाला धर्म है। इसलिए यह हेतु विरुद्ध व्याप्य उपलब्धि का है।

❇ अन्य उदाहरण –

1. नास्त्यत्र ज्ञानं जडात्।

   इसमें ज्ञान नहीं है, जड़ पदार्थ होने से।

2. नास्ति सिद्धे रूपममूर्तत्त्वात्।

   सिद्ध भगवान में रूप गुण नहीं है, अमूर्त होने से।

2. विरुद्ध कार्य उपलब्धि का उदाहरण

''नास्त्यत्र शीतस्पर्शो धूमात्'' ॥69॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इसमें
शीतस्पर्शः	=	शीत स्पर्श

नास्ति = नहीं है

धूमात् = धूम होने से

Meaning:-

There is no feeling of cold here, because there is smoke.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर शीतस्पर्श नहीं है, क्योंकि धूम है।

❖ धूमात् - हेतु है।

❖ शीत स्पर्श नहीं है - साध्य है।

❖ यहाँ शीत अग्नि के विरुद्ध है और अग्नि का कार्य धुँआ है इसलिए यह हेतु विरुद्ध कार्य उपलब्धि रूप है।

अन्य उदाहरण-

1. नास्ति अत्र प्राणिनि संक्लेशः प्रशस्तदर्शनात्।

इस प्राणी में संक्लेश नहीं है, प्रशस्त रुप का दर्शन होने से।

2. नास्ति अत्र दिवसो नक्तंचर-भ्रमणात्।

यहाँ दिन नहीं है क्योंकि रात्रि में चलने वाले जीव भ्रमण कर रहे हैं।

3. विरुद्ध कारण उपलब्धि का उदाहरण

''नास्मिन् शरीरिणि सुखमस्ति हृदयशल्यात्'' ॥70॥

अन्वयार्थ :-

अस्मिन् = इस

शरीरिणि = प्राणी में

सुखम् = सुख

न अस्ति = नहीं है।

हृदय-शल्यात् = हृदय में शल्य होने से

Meaning:-

There is no happiness in this creature because it has grief. [the antithesis of happiness]

सूत्रार्थ :-

इस प्राणी में सुख नहीं है, क्योंकि हृदय में शल्य पाई जाती है।

❖ हृदयशल्यात् - हेतु है।

❖ सुख नहीं है - साध्य है।

❖ सुख का विरुद्ध साध्य दुःख है। दुःख का कारण हृदय की शल्य होती है। इसलिए यह हेतु विरुद्ध कारण उपलब्धि का है।

❖ अन्य उदाहरण -

1. नास्त्यत्र प्रकाशो निशोदयात्।

यहाँ प्रकाश नहीं है, निशा का उदय होने से।

2. नास्ति अस्मिन् शरीरिणि सम्यक्त्वं कुगुरुसेवनात्।

इस प्राणी में सम्यग्दर्शन नहीं है क्योंकि कुगुरु की सेवा करता है।

3. नास्ति अस्मिन् देहिनि जीवनं हृदयाघातात्।

इस प्राणी में जीवन नहीं है, हृदयाघात हो जाने से।

4. विरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण

''नोदेष्यति मुहूर्त्तान्ते शकटं रेवत्युदयात्'' ॥71॥

अन्वयार्थ :-

मुहूर्तान्ते = एक मुर्हूत के पश्चात्

शकटं	=	रोहिणी नक्षत्र
न	=	नहीं
उदेष्यति	=	उदित होगा
रेवती	=	रेवती का
उदयात्	=	उदय होने से

Meaning:-

The Rohiṇi will not rise after the end of a muhūrta as the Revati has arisen.

सूत्रार्थ :-

एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि अभी रेवती नक्षत्र का उदय हो रहा है।

❖ रेवत्युदयात् - हेतु है।

❖ शकटं का उदय नहीं होगा- साध्य है।

❖ ध्यान रहे - रेवती का उदय अश्विनी से पहले होता है।

❖ चूंकि अश्विनी का पूर्वचर रेवती नक्षत्र है। इसलिए रेवती नक्षत्र का उदय विरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि रूप हेतु है।

❖ अन्य उदाहरण

1. न भविष्यति श्वः शनिवासरः सोमवासरसद्भावात्।

कल शनिवार नहीं होगा क्योंकि आज सोमवार है।

2. न भविष्यति मासान्ते आषाढः चैत्रसद्भावात्।

एक माह बाद आषाढ़ का महीना नहीं आएगा क्योंकि अभी चैत्र का महीना चल रहा है।

5. विरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण

"नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्परं पुष्योदयात्" ॥72॥

अन्वयार्थ :-

भरणिः	=	भरणि नक्षत्र का
न उदगाद्	=	उदय नहीं हुआ है
मुहूर्तात्	=	एक मुहूर्त
परं	=	बाद
पुष्योदयात्	=	पुष्य नक्षत्र का उदय होने से

Meaning:-

The Bharaṇi (Constellation) did not appear before the Muhūrta because [now] the constellation Puṣyā has arisen.

सूत्रार्थ :-

एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नहीं हुआ है क्योंकि अभी पुष्य नक्षत्र का उदय पाया जा रहा है।

❖ पुष्योदयात् - हेतु है।

❖ भरणि का उदय नहीं हुआ - साध्य है।

❖ चूँकि पुनर्वसु नक्षत्र का उत्तरचर पुष्य नक्षत्र होता है इसलिए पुष्य नक्षत्र का उदय प्रासंगिक उदाहरण में विरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि रूप हेतु है।

❖अन्य उदाहरण-

1. नाभवत् दिवसात् प्राक् सोमवासरो बुधवासरात्।

एक दिन पहले (कल) सोमवार नहीं था क्योंकि आज बुधवार है।

2. नाभवत् मासात् प्राक् आषाढः कार्तिकसद्भावात्।

पिछले महीने अषाढ नहीं था क्योंकि अभी कार्तिक मास चल रहा है।

6. विरुद्ध सहचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण

"नास्त्यत्र भित्तौ परभागाभावोऽर्वाग्भागदर्शनात्" ॥73॥

अत्र भित्तौ	=	इस दीवाल में
पर भाग-अभावः	=	परभाग का अभाव
नास्ति	=	नहीं है
अर्वाग्भागदर्शनात्-	=	इस ओर के भाग का दर्शन होने से

Meaning:-

This wall is not devoid of an outside, because it has an inside [the sahachara (coexistent) of the outside].

सूत्रार्थ :-

इस भित्ति [दीवाल] में परभाग [उस ओर के भाग] का अभाव नहीं है, क्योंकि अर्वाग्भाग [इस ओर का भाग] दिखाई दे रहा है।

❇ अर्वाग्भाग दर्शनात् - हेतु है

❇ पर भाग का अभाव नहीं है - साध्य है

❇ दीवाल के पर भाग के अभाव का विरोधी परभाग का सद्भाव है और उसका सहचारी दीवाल के इस ओर के भाग का पाया जाना है। इसलिए यह विरुद्ध सहचर उपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

अन्य उदाहरण -

1. नास्ति आत्मनि तैजसशरीराभावः कार्मणशरीर सद्भावात्।

इस आत्मा में तैजसशरीर का अभाव नहीं है, कार्मण शरीर होने से।

2. नास्ति सप्तर्षौ अधस्ताराभावः उपरिमतारोदयात्।

सप्तऋषि तारागण में नीचे वाले तारे का अभाव नहीं है क्योंकि ऊपर के तारे का सद्भाव है।

अविरुद्ध अनुपलब्धि के भेद -

"अविरुद्धानुपलब्धिः प्रतिषेधे सप्तधा स्वभाव-व्यापक-कार्य-कारण-पूर्वोत्तर-सहचरानुपलम्भ-भेदात्" ॥74॥

अन्वयार्थ :-

अविरुद्धानुपलब्धिः	=	अविरुद्धानुपलब्धि
प्रतिषेधे	=	प्रतिषेध होने पर
सप्तधा	=	सात प्रकार की है
स्वभाव-व्यापक-कार्य-	=	स्वभाव, व्यापक, कार्य,
कारण-पूर्वोत्तर- सहचर-	=	कारण, पूर्वचर, उत्तरचर, सहचर
अनुपलम्भ-	=	अभाव के
भेदात्	=	भेद से

Meaning:-

When (the sādhya consists of) Pratiṣedha (non-existence of some fact), Aviruddha Anupalabdhi is of seven kinds viz. non finding of Svabhāva, Vyāpaka, Kārya, Kāraṇa, Pūrvachara, Uttarachara and sahachara.

सूत्रार्थ :-

प्रतिषेध अर्थात् अभाव को सिद्ध करनेवाली अविरुद्धानुपलब्धि के सात भेद

हैं। (1)अविरुद्धस्वभावानुपलब्धि (2) अविरुद्धव्यापकानुपलब्धि (3)अविरुद्धकार्यानुपलब्धि (4)अविरुद्धकारणानुपलब्धि (5) अविरुद्धपूर्वचरानुपलब्धि (6) अविरुद्धोत्तरचरानुपलब्धि (7)अविरुद्धसहचरानुपलब्धि

1. अविरुद्ध स्वभाव – अनुपलब्धि का उदाहरण

''नास्त्यत्र भूतले घटोऽनुपलब्धेः'' ॥75॥

अन्वयार्थ :-

अत्र भूतले	=	यहाँ भूतल पर
घटः	=	घड़ा
नास्ति	=	नहीं है
अनुपलब्धेः	=	उपलब्ध नहीं होने से।

Meaning:-

There is no pitcher in this place because [its svabhāva or identity] is not to be found [i.e. nothing resembling its identity is Present here]

सूत्रार्थ :-

इस भूतल पर घट नहीं है, क्योंकि उपलब्धि योग्य स्वभाव के होने पर भी वह नहीं पाया जा रहा है।

❖ यहाँ घट की अनुपलब्धि स्वभाव से है इसलिए अविरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि का यह उदाहरण है।

❖ अन्य उदाहरण –

1. नास्ति म्लेच्छखण्डे सम्मूर्च्छनमनुष्योऽनुपलब्धेः।

म्लेच्छखण्ड में सम्मूर्च्छन मनुष्य नहीं है, अनुपलब्ध होने से।

2. नास्त्यत्र नारकी अनुपलब्धेः।

यहाँ नारकी नहीं है, अनुपलब्ध होने से।

3. नास्त्यत्र सिंहोऽनुपलब्धेः।

यहाँ सिंह नहीं है अनुपलब्ध होने से।

2. अविरुद्ध व्यापक – अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण –

''नास्त्यत्र शिंशपा वृक्षानुपलब्धेः'' ॥76॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	यहाँ पर
शिंशपा	=	शीशम
नास्ति	=	नहीं है
वृक्षा–ऽनुपलब्धेः	=	वृक्ष की उपलब्धि नहीं होने से।

Meaning:-

There is no sins̃apā [tree] here, because no tree is found here.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर शीशम नहीं है, क्योंकि वृक्ष नहीं पाया जा रहा है।

❖ वृक्ष – व्यापक है, शीशम व्याप्य है।

❖ जब वृक्ष ही नहीं है, तो शीशम होगा ही नहीं इसलिए व्यापक का अभाव होने से व्याप्य का अभाव तो होगा ही। इसलिए यह हेतु अविरुद्ध व्यापक अनुपलब्धि का है।

अन्य उदाहरण –

1. नास्ति अलोकाकाशे जीवद्रव्यं धर्म द्रव्यानुपलब्धेः।

आलोकाकाश में जीव द्रव्य नहीं है क्योंकि वहाँ धर्म द्रव्य की अनुपलब्धि है।

2. नास्ति गृहे गौः पशुसमूहानुपलब्धेः।

इस घर में गाय नहीं है क्योंकि पशु समूह की अनुपलब्धि है।

3. नास्ति क्षीरसमुद्रे द्वीन्द्रियजीवो विकलेन्द्रियानुपलब्धेः।

क्षीर समुद्र में द्वीन्द्रिय जीव नहीं हैं क्योंकि विकलेन्द्रिय जीवों की अनुपलब्धि है।

3. अविरुद्ध कार्य अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण

''नास्त्यत्राप्रतिबद्ध – सामर्थ्योऽग्नि धूमानुपलब्धेः'' ॥77॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	यहाँ
अप्रतिबद्ध	=	बिना रुकी
सामर्थ्यः	=	सामर्थ्य वाली
अग्निः	=	आग
नास्ति	=	नहीं है
धूम–	=	धुंआ की
अनुपलब्धेः	=	प्राप्ति न होने से।

Meaning:-

There is no fire whose potency [Sāmarthya] has not been obstructed here, because we do not find smoke.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर अप्रतिबद्ध सामर्थ्य वाली अग्नि नहीं है, क्योंकि धूम नहीं पाया जाता

है।

❖ अप्रतिबद्ध सामर्थ्य – जिसकी शक्ति को बांधा न गया हो अर्थात् जो अपना कार्य करने में समर्थ हो।

❖ जिस अग्नि को मन्त्र आदि की सामर्थ्य से अथवा राख आदि से नहीं दबाया गया है, ऐसी अग्नि यहाँ नहीं है क्योंकि अग्नि का अविरुद्धकार्य (सीधा कार्य) धूम नहीं पाया जाता है। इसलिए यह अविरुद्ध कार्य अनुपलब्धि का उदाहरण है।

❖ अन्य उदाहरण

1. नास्ति अस्मिन्नात्मनि सम्यग्दर्शनं प्रशमादिभावानुपलब्धेः।

इस आत्मा में सम्यग्दर्शन नहीं है क्योंकि प्रशम आदि भावों की अनुपलब्धि है।

2. नास्ति अस्मिन्नात्मनि शुद्धोपयोगो रत्नत्रयानुपलब्धेः।

इस आत्मा में शुद्धोपयोग नहीं है क्योंकि रत्नत्रय की अनुपलब्धि है।

4. अविरुद्ध कारण अनुपलब्धि का उदाहरण

''नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः'' ॥78॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	यहाँ
धूमः	=	धुँआ
नास्ति	=	नहीं है
अनग्नेः	=	अग्नि के नहीं होने से

Meaning:-

There is no smoke here because there is no fire.

सूत्रार्थ :-

यहाँ पर धुँआ नहीं है क्योंकि अग्नि का अभाव है।

❇ धुँए का अविरोधी कारण अग्नि होती है। अर्थात् अग्नि कारण से धुँए की उत्पत्ति होती है। इस अविरोधी कारण की उपलब्धि नहीं होने से यह अविरुद्ध कारण अनुपलब्धि का उदाहरण है।

❇ अन्य उदाहरण -

1. नास्त्यस्मिन्नात्मनि सम्यग्दर्शनं तत्त्वश्रद्धानानुपलब्धेः

इस आत्मा में सम्यग्दर्शन नहीं है क्योंकि तत्त्व श्रद्धान की अनुपलब्धि है।

2. नास्ति श्रमणेऽस्मिन् रत्नत्रयं महाव्रतानुपलब्धेः।

इस श्रमण में रत्नत्रय नहीं है क्योंकि महाव्रत की अनुपलब्धि है।

3. नास्ति मनुष्येऽस्मिन् संयमः पापविरतेरनुपलब्धेः।

इस मनुष्य में संयम नहीं है क्योंकि पाप विरति की अनुपलब्धि है।

5. अविरुद्ध पूर्वचर अनुपलब्धि का उदाहरण

''न भविष्यति मुहूर्तान्ते शकटं कृत्तिकोदयानुपलब्धे'' ॥79॥

अन्वयार्थ :-

मुहूर्तान्ते	=	एक मुहूर्त के बाद
शकटम्	=	रोहिणी नक्षत्र
न भविष्यति	=	नहीं होगा
कृत्तिका	=	कृत्तिका नक्षत्र के
उदय	=	उदय की
अनुपलब्धेः	=	उपलब्धि नहीं होने से

Meaning:-

There will be no rise of the Rohiṇi after a Muhūrta as we have no knowledge of the rise of the Krittika.

सूत्रार्थ :-

एक मुहूर्त के पश्चात् रोहिणी का उदय नहीं होगा, क्योंकि अभी कृत्तिका का उदय नहीं पाया जाता।

❇ चूँकि रोहिणी नक्षत्र के उदय से पूर्व कृत्तिका नक्षत्र का उदय होता है। पूर्वचर हेतु कृत्तिका के उदय का अभाव होने से उसके बाद आने वाले रोहिणी के उदय का अभाव इस उदाहरण में दिखाया गया है इसलिए यह अविरुद्ध पूर्वचर अनुपलब्धि हेतु का उदाहरण है।

❇ अन्य उदाहरण-

1. कल सोमवार नहीं होगा आज रविवार की अनुपलब्धि होने से ।

2. आगामी मास मार्च नहीं होगा वर्तमान में फरवरी मास की अनुपलब्धि होने से।

6. अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि का उदाहरण -

''नोदगाद् भरणिः मुहूर्तात्प्राक् तत एव'' ॥80॥

अन्वयार्थ :-

भरणिः	=	भरणि का
मुहूर्तात्	=	एक मुहूर्त पहले
न उदगाद्	=	उदय नहीं हुआ है
ततः	=	उस कारण से (कृत्तिका का उदय न होने से)
एव	=	ही

Meaning:-

The Bharaṇi had not risen before a Muhūrta

because now the Krittika is not up.

सूत्रार्थ :-

एक मुहूर्त पहले भरणी का उदय नहीं हुआ है क्योंकि अभी कृत्तिका के उदय का अभाव है।

❖ चूँकि भरणि के बाद कृत्तिका का उदय होता है।

❖ साध्य - भरणि का उदय नहीं हुआ है।

❖ हेतु - कृत्तिका के उदय का अभाव होने से ।

❖ यहाँ उत्तरचर हेतु कृत्तिका के उदय का अभाव हेतु दिखा कर उससे पहले होने वाले भरणि के उदय का अभाव सिद्ध किया है इसलिए यह अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि का उदाहरण है।

❖ अन्य उदाहरण-

1. कल शनिवार नहीं था आज रविवार की उपलब्धि नहीं होने से।

2. एक मास पहले जनवरी नहीं निकली है क्योंकि फरवरी की वर्तमान में अनुपलब्धि है।

7. अविरुद्ध सहचर अनुपलब्धि का उदाहरण

"नास्त्यत्र समतुलायामुन्नामो नामानुपलब्धेः" ॥81॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इस
समतुलायाम्	=	तराजू में
उन्नामः	=	ऊँचाई
नास्ति	=	नहीं है।
नाम-	=	नीचापन
अनुपलब्धेः	=	प्राप्ति नहीं होने से।

Meaning:-

One pan of this pair of scales does not touch beam as the other one is on the same level with it.

सूत्रार्थ :-

इस समतुला अर्थात् समान [ठीक] तौलनेवाली तराजू [ताखड़ी] में उन्नाम [एक और ऊँचापन] नहीं है, क्योंकि नाम[दूसरी ओर नीचापन] नहीं पाया जाता है।

❖ हेतु - नाम उपलब्ध नहीं होने से

❖ साध्य - उन्नाम का तराजू में अभाव

❖ तराजू के एक पलड़े में ऊँचापन नहीं है क्योंकि नीचे की ओर दूसरे पलड़े की उपलब्धि नहीं है। यहाँ हेतु साध्य के सहचर है। तराजू के दोनों पलड़े सहचर होते हैं तथा उन्नाम दशा नहीं होने से नाम (नीचापन) की दशा भी उपलब्धि नहीं होगी इसलिए यह अविरूद्ध सहचर अनुपलब्धि का उदाहरण है।

❖ इसी तरह अन्य उदाहरण भी बना सकते है - यथा -

1. नास्ति अस्मिन्नात्मनि सम्यग्ज्ञानं, सम्यग्दर्शनानुपलब्धेः।

इस आत्मा में सम्यग्ज्ञान नहीं है, सम्यग्दर्शन की उपलब्धि नहीं होने से।

2. नास्ति अस्मिन्नात्मनि केवलज्ञानं केवलदर्शनानुपलब्धेः।

इस आत्मा में केवलज्ञान नहीं है, केवलदर्शन की अनुपलब्धि होने से।

3. नास्ति धर्मद्रव्ये रूपं रसानुपलब्धेः।

धर्म द्रव्य में रूप नहीं है, रस की अनुपलब्धि होने से

4. नास्ति पुद्गले ज्ञानं चेतनानुपलब्धेः।

पुद्गल में ज्ञान नहीं है, चेतना की अनुपलब्धि होने से।

5. नास्ति तीर्थंकरे रोगोऽसात कर्मोदीरणानुपलब्धेः।

तीर्थंकर में रोग नहीं है, असाता कर्म की उदीरणा की अनुपलब्धि होने से।

विरुद्ध–अनुपलब्धि के भेद –

''विरुद्धानुपलब्धि – विधौ त्रेधा विरुद्ध–कार्यकारण–स्वभावानुपलब्धिभेदात्'' ॥82॥

अन्वयार्थ :–

विरुद्धानुपलब्धि:	=	विरुद्ध अनुपलब्धि
विधौ	=	विधि में
त्रेधा	=	तीन प्रकार की है
विरुद्ध–कार्य–कारण–	=	विरुद्ध, कार्य, कारण,
स्वभावानुपलब्धि	=	और स्वभाव की अनुपलब्धि का
भेदात्	=	भेद होने से

Meaning:-

Viruddha Anupalabdhi in vidhi is of three kinds - Viruddha Kārya Anupalabdhi, Viruddha Kāraṇa Anuplabdhi and Viruddha Svabhāva Anupalabdhi.

सूत्रार्थ :–

विधि [सद्भाव] के सिद्ध करने में विरुद्धानुपलब्धि के तीन भेद हैं –

1. विरुद्धकार्यानुपलब्धि
2. विरुद्धकारणानुपलब्धि
3. विरुद्धस्वभावानुपलब्धि

❈ विरुद्ध अनुपलब्धि 'विधि' [सकारात्मक] वाक्यों में होती है।

❈ इस हेतु के उदाहरण की पहचान यह है कि

1. वाक्य का प्रारम्भ 'अस्ति' पद से या सद्भाव बताने से होगा।
2. हेतु में 'अनुपलब्धि' शब्द जुड़ा होगा।

1. विरुद्ध कार्य अनुपलब्धि का उदाहरण

''यथास्मिन्प्राणिनि व्याधिविशेषोऽस्ति निरामयचेष्टानुपलब्धे:'' ॥83॥

अन्वयार्थ :–

यथा	=	जैसे
अस्मिन् प्राणिनि	=	इस प्राणी में
व्याधि–विशेष:	=	रोग विशेष
अस्ति	=	है
निरामय–	=	रोग रहित
चेष्टा–	=	प्रवृत्ति की
अनुपलब्धे:	=	प्राप्ति न होने से

Meaning:-

As for example, some disease exists in this animal, because the actions of a healthy body are not found.

सूत्रार्थ :–

जैसे इस प्राणी में व्याधि विशेष है, क्योंकि निरामय [रोग रहित] चेष्टा नहीं पाई जाती है।

❈ हेतु – निरामय चेष्टा की अनुपलब्धि है।

❈ साध्य – व्याधि विशेष है।

❈ जिस प्राणी में व्याधि विशेष रहती है उस प्राणी के कार्य कलाप स्वस्थ व्यक्ति की तरह नहीं होते हैं।

❈ व्याधि विशेष का विरुद्ध कार्य निरामय चेष्टा का अभाव है इसलिए अथवा व्याधि के विरुद्ध स्वस्थता है उसका कार्य स्वस्थ चेष्टा है। उसकी अनुपलब्धि

(अभाव) होने से यह विरुद्ध कार्य अनुपलब्धि का उदाहरण है।

❖ अन्य उदाहरण -

1. अस्मिन् देवे कामनाऽस्ति सन्तुष्टेरनुपलब्धेः।

इस देव में इच्छा है, सन्तुष्टि की अनुपलब्धि होने से।

2. अस्मिन् प्राणिनि संयमोऽस्ति प्रमादानुपलब्धेः।

इस प्राणी में संयम है, प्रमाद की अनुपलब्धि होने से।

3. अस्मिन् देहिनि संयत ज्ञान मस्ति अनर्थभाषणानुपलब्धेः।

इस प्राणी में संयत ज्ञान है, अनर्थ भाषण की अनुपलब्धि होने से।

2. विरुद्ध कारण अनुपलब्धि का उदाहरण

"अस्त्यत्र देहिनि दुःखमिष्टसंयोगाभावात्" ॥84॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इस
देहिनि	=	प्राणी में
दुःखम्	=	दुःख
अस्ति	=	है
इष्टसंयोग-	=	इष्ट संयोग का
अभावात्	=	अभाव होने से

Meaning:-

There is grief in this creature, because it has no connection with its dear ones.

सूत्रार्थ :-

इस प्राणी में दुःख है, क्योंकि इष्ट संयोग का अभाव है।

❖ हेतु - इष्ट संयोग का अभाव

❖ साध्य - दुःख होना

3. विरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि का उदाहरण

"अनेकान्तात्मकं वस्त्वेकान्तस्वरूपानुपलब्धेः" ॥85॥

अन्वयार्थ :-

अनेकान्तात्मकं	=	अनेक धर्मस्वरूप वाली
वस्तु	=	वस्तु में
एकान्त-	=	एक धर्म
स्वरूप -	=	स्वभाव की
अनुपलब्धेः	=	प्राप्ति न होने से

Meaning:-

All things are Anekāntika [Posessed of different aspects] because we do not find that these have only one aspect.

सूत्रार्थ :-

वस्तु अनेकान्तात्मक है, अर्थात् अनेक धर्मवाली है, क्योंकि वस्तु का एकान्त स्वरूप पाया नहीं जाता है।

परम्परा कारण भी इन्हीं हेतुओं में गर्भित है।

"परम्परासम्भवत्साधनमत्रैवान्तर्भावनीयम्" ॥86॥

अन्वयार्थ :-

परम्परा	=	परम्परा से
सम्भवत्	=	संभव हुए
साधनम्	=	साधन को

अत्रैव	=	इनमें ही
अन्तर्भावनीयम्	=	अन्तर्भाव करना चाहिए

Meaning:-

The Hetus which arise one after the other should be included within those (which have been described).

सूत्रार्थ :-

परम्परा से जो साधन रूप हेतु सम्भव है, उनका इन ही हेतुओं में अन्तर्भाव कर लेना चाहिए।

❖ किसी भी कार्य की उत्पत्ति में अनेक कारणों की आवश्यकता होती है। कोई भी कार्य निरन्तर आगे बढ़ते हुए क्रम से पूर्णता को प्राप्त होता है। उस क्रम में बीच में जो पर्यायें आती हैं वे सभी अन्तिम पर्याय के लिए परम्परा कारण होती है।

❖ उन सभी परम्परा रूप हेतुओं का अन्तर्भाव पहले बताए गए इन्हीं हेतुओं में होता है। हेतुओं के अन्य कोई और अधिक भेदों की आवश्यकता न है और न हो सकते हैं।

❖ आगे उदाहरण देकर इसी बात को और स्पष्ट करते हैं।

परम्परा कार्य का उदाहरण

''अभूदत्र चक्रे शिवकः स्थासात्'' ॥ 87 ॥

अन्वयार्थ :-

अत्र चक्रे	=	इस चाक पर
शिवकः	=	शिवक
अभूत्	=	हो चुका है
स्थासात्	=	अभी स्थास होने से

Meaning:-

There was Śivaka (a clod of earth resembling a Śivalinga) on this potter's wheel because we see sthāsa there.

सूत्रार्थ :-

इस चक्र पर **शिवक** हो चुका है, क्योंकि स्थास पाया जा रहा है।

❖ कुम्भकार मिट्टी के लोंदे को अब चक्र [चाक] पर चढ़ाता है तब घड़ा बनने से पहले उसकी अनेक परिणतियाँ [पर्यायें] होती हैं।

❖ सबसे पहले कुम्भकार मिट्टी के लौंदे को जब चाक पर रखता है तो उस पिण्डाकार पर्याय को **शिवक** कहते है।

❖ फिर उसी के आगे वह पिण्ड **छत्रक** के रूप में बदल जाता है।

❖ फिर उसके आगे होने वाली पर्याय **स्थास** कहलाती है।

❖ उदाहरण में कहा गया है कि शिवक पर्याय हो चुकी है क्योंकि स्थास पर्याय अभी बनी है। यहाँ स्थास और शिवक के बीच में एक पर्याय छत्रक की और है। शिवक का कार्य छत्रक और छत्रक का कार्य स्थास पर्याय है। इसलिए स्थास के लिए शिवक परम्परा से कार्य हेतु हुआ। तथा शिवक का साक्षात् कार्य तो छत्रक है।

❖ इसी प्रकार अन्य कार्यों में भी समझना -

1. अभूदत्र दधि घृतात्

इस दूध में दही हो चुका है, घृत बन जाने से।

2. अत्रात्मनि अभवत् क्षयोपशमलब्धिः करणलब्धेः।

इस आत्मा में क्षयोपशम लब्धि हो चुकी है क्योंकि अभी करण लब्धि है।

3. अस्मिन् आत्मनि शुभोपयोगोऽभवत् केवलज्ञानात्।

इस आत्मा में शुभोपयोग हुआ है, केवलज्ञान होने से।

4. अस्मिन् आत्मनि प्रमत्ताप्रमत्तगुणस्थानपरिणति रभवत् सयोगिगुणस्थानात्।

इस आत्मा में प्रमत्त-अप्रमत्त गुणस्थान की परिणति हुई है क्योंकि सयोगि

गुणस्थान में है।

❖ इन सभी परम्परा कार्यों का अन्तर्भाव किस हेतु में होगा यह आगे बताते हैं।

परम्परा कार्य का अविरुद्ध कार्य उपलब्धि में अन्तर्भाव

''कार्यकार्यमविरुद्धकार्योपलब्धौ'' ॥88॥

अन्वयार्थ :-

कार्यकार्यम्	=	कार्य के कार्यरूप हेतु का
अविरुद्धकार्योपलब्धौ	=	अविरुद्ध कार्य उपलब्धि में [अन्तर्भाव होता है]

Meaning:-

[This Hetu showing] effect of an effect will be included within Aviruddha Kārya Upalabdhi (as already defined).

सूत्रार्थ :-

कार्य के कार्यरूप उक्त हेतु का अविरुद्ध कार्योपलब्धि में अन्तर्भाव करना चाहिए।

❖ पूर्वोक्त सूत्र में दिये गए उदाहरण में कार्य के भी कार्य रूप हेतु का अन्तर्भाव अविरुद्ध कार्योपलब्धि में कर लेना चाहिए।

❖ चूँकि शिवक का अविरुद्ध कार्य छत्रक है और छत्रक का अविरुद्ध कार्य स्थास है इसलिए स्थास अविरुद्ध कार्य रूप हेतु है, शिवक के लिए। क्योंकि शिवक के बिना स्थास कार्य नहीं हो सकता है।

❖ इसी प्रकार अन्य उदाहरणों में भी समझ लेना।

दृष्टान्त देकर दूसरा हेतु और कहते है

''नास्त्यत्र गुहायां मृगक्रीडनं, मृगारिसंशब्दनात् कारणविरुद्धकार्यं विरुद्धकार्योपलब्धौ यथा'' ॥89॥

अन्वयार्थ :-

अत्र	=	इस
गुहायां	=	गुफा में
मृगक्रीडनम्	=	मृगक्रीड़ा
नास्ति	=	नहीं है
मृगारि-	=	सिंह की
संशब्दनात्	=	गर्जना होने से
यथा	=	जैसे
कारणविरुद्ध-कार्यं	=	यह कारण विरुद्ध कार्य रूप हेतु का
विरुद्धकार्योपलब्धौ	=	विरुद्धकार्योपलब्धि में [अन्तर्भाव होता है]

Meaning:-

There is no play of deer in this cave because there is a roar of lion. Here there is an effect opposed to a cause. This should be (included) within Viruddha Kārya Upalabdhi.

सूत्रार्थ :-

पर्वत की इस गुफा में मृग की क्रीड़ा नहीं है क्योंकि मृग के शत्रु सिंह का गर्जन सुनाई दे रहा है। यह कारणविरुद्ध कार्य रूप हेतु है इसलिए विरुद्धकार्योपलब्धि में उसका अन्तर्भाव करना चाहिए। जैसे यह है तैसे ही वह है।

❖ वस्तुतः यह सूत्र पूर्व सूत्र में सिद्ध की गई अविरुद्धकार्यउपलब्धि को

समझाने के लिए उदाहरण के रूप में है।

❖ उदाहरण - इस गुफा में मृग की क्रीड़ा नहीं है। [साध्य], क्योंकि मृग की क्रीड़ा का कारण मृग है और मृग का विरोधी [अथवा विरुद्ध] सिंह है, सिंह का कार्य उसकी गर्जना है। इसलिए यह उदाहरण विरुद्ध कार्य उपलब्धि का है।

❖ इस परम्परा साधन को जैसे विरुद्ध कार्य उपलब्धि हेतु में अन्तर्भाव किया है वैसे ही पूर्व सूत्र में कहे परम्परा से अविरुद्ध कार्य (कार्य-कार्य) हेतु को भी अविरुद्ध कार्य-उपलब्धि में अन्तर्भावित कर लेना चाहिए।

निष्णात पुरुष हेतु का प्रयोग कैसे करें -

''व्युत्पन्नप्रयोगस्तु तथोपपत्त्याऽन्यथानुपपत्त्यैव वा'' ॥ 90 ॥

अन्वयार्थ :-

तु	=	परन्तु
व्युत्पन्नप्रयोगः	=	पाण्डित्य प्रयोग
तथोपपत्तिः	=	तथोपपत्ति
वा	=	अथवा
अन्यथानुपपत्तिः	=	अन्यथानुपपत्ति
एव	=	ही है

Meaning:-

The use by those who are conversant (with the process of inference) is from existance or non-existence of that universal concomitance [between the sādhya and the sādhana].

सूत्रार्थ :-

व्युत्पन्न प्रयोग तथोपपत्ति अथवा अन्यथानुपपत्ति के द्वारा करना चाहिए।

❖ व्युत्पन्न [विद्वान] पुरुषों के द्वारा साध्य सिद्धि में जो प्रयोग किया जाता है, वह व्युत्पन्न प्रयोग कहलाता है।

❖ पहले हेतु के जितने भी भेद बतलाकर आये हैं वे सभी हेतु इन दो भेदों में ही समा जाते हैं। फिर भी बाल [मन्द] बुद्धि वालों के लिए उपर्युक्त भेद जानना आवश्यक है। उन हेतुओं का प्रयोग करने लग जाने से ही व्युत्पन्न बुद्धि बनती है।

❖ व्युत्पन्न प्रयोग दो प्रकार का है

1. तथोपपत्ति हेतु - एक तरह से इसमें अन्वय व्याप्ति दिखाई जाती है। साध्य के होने पर साधन का होना तथोपपत्ति है।

2. अन्यथानुपपत्ति हेतु - अन्यथा + अनुपपत्ति = अन्यथा उत्पत्ति नहीं हो सकती है। इसमें व्यतिरेक व्याप्ति दिखाई जाती है। अर्थात् साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाना अन्यथानुपपत्ति है।

व्युत्पन्न प्रयोग के उदाहरण

''अग्निमानयं देशस्तथैव धूमवत्त्वोपपत्ते -र्धूमवत्त्वान्यथानुपपत्तेर्वा'' ॥ 91 ॥

अन्वयार्थ :-

अयम्	=	यह
देशः	=	देश (स्थान)
अग्निमान्	=	अग्नि वाला है (क्योंकि)
तथा	=	उस प्रकार
एव	=	ही
धूमवत्त्व-	=	धूमवान
उपपत्तेः	=	प्राप्त होता है
वा	=	अथवा
धूमवत्त्व-	=	धूमवाला

अन्यथानुपपत्तेः = अन्यथा प्राप्त नहीं होता है

Meaning:-

This place is full of fire, for existance of smoke is only possible if there be fire here or (this place is full of fire) as smoke does not exist here.

सूत्रार्थ :-

यह प्रदेश अग्निवाला है क्योंकि तथैव अर्थात् अग्निवाला होने पर ही धूमवाला हो सकता है अथवा अग्नि के अभाव में धूमवाला हो नहीं सकता है।

❈ व्युत्पन्न (प्रवीण) पुरुष इस तरह प्रयोग करते हैं कि वे प्रतिज्ञा वाक्य के साथ ही तथोपपत्ति या अन्यथानुपपत्ति कहकर अनुमान सिद्ध कर देते हैं।

❈ जैसे यह प्रदेश अग्निवाला है (प्रतिज्ञा) क्योंकि अग्निवाला होने पर ही धूमवाला होता है (हेतु) इसमें अन्वय व्याप्ति घटित हुई। अथवा इसको दूसरी तरह से इस प्रकार भी कह सकते हैं - यह प्रदेश अग्निवाला है(प्रतिज्ञा) क्योंकि अग्निवाला नहीं होने पर धूम वाला अन्यथा हो नहीं सकता है।(हेतु) इसमें व्यतिरेक व्याप्ति घटित हुई।

❈ सूत्र में आया 'तथैव' पद अन्वय व्याप्ति में साध्य का सद्भाव (जैसे अग्निवाला होने पर) दिखाता है तथा व्यतिरेक व्याप्ति में साध्य का अभाव (जैसे अग्नि वाला नहीं होने पर) दोनों को बताता है।

❈ अन्य उदाहरण -

अन्यथानुपपत्ति के कुछ उदाहरण आ. जयसेन देव ने समयसार के आस्रवाधिकार गाथा 105,106 की टीका करते हुए पक्ष, हेतु के माध्यम से दिये हैं।

1. अनन्तानुबन्धिक्रोधमानमायालोभमिथ्यात्वोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टेर्न सन्तीति पक्षः .... इति गाथा-कथित-लक्षणस्य चतुर्थगुणस्थानवर्ति - सरागसम्यक्त्वान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः।

अर्थात् - सम्यग्दृष्टि जीव के अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ और

मिथ्यात्व के उदय से होने वाले राग, द्वेष, मोह भाव नहीं होते हैं। (यह पक्ष है) क्योंकि गाथा में आठगुणों और पच्चीस दोष से रहित सम्यग्दर्शन अन्यथा उत्पन्न नहीं हो सकता है। (यह हेतु हुआ)

इसी तरह - 2. अनन्तानुबन्ध्यप्रत्याख्यानावरणसंज्ञाः क्रोधमानमायालोभोदयजनिता रागद्वेषमोहाः सम्यग्दृष्टे- र्न सन्तीति पक्षः... पंचमगुणस्थानयोग्यदेशचारित्राविनाभाविसरागसम्यक्त्वस्यान्यथानुपपत्तेरिति हेतुः।

अर्थात् - अनन्तानुबन्धी और अप्रत्याख्यानावरण नाम वाले क्रोध, मान, माया, लोभ के उदय से होने वाले राग, द्वेष, मोह भाव सम्यग्दृष्टि जीव के नहीं होते हैं(पक्ष) क्योंकि .... पंचम गुणस्थान के योग्य देशचारित्र के साथ होने वाला सराग सम्यक्त्व अन्यथा हो नहीं सकता है (हेतु)।

इसी तरह आगे के गुणस्थानों में भी लगा लेना।

तथोपपत्ति का उदाहरण - 1. अयं पुरुषो जैनी स्याद्वाद-प्ररूपणातथोपपत्तेः यह पुरुष जैनी है क्योंकि स्याद्वाद की प्ररूपणा (कथन) तभी प्राप्त हो सकती है।

2. अयं पुरुषः बुद्धिमान् तथैव वचनचातुर्योत्पत्तेः।

यह पुरुष बुद्धिमान है क्योंकि बुद्धिमान होने पर ही वचन चातुर्य होता है।

व्याप्ति ज्ञान में हेतु का प्रयोग ही उपयोगी है।

''हेतु-प्रयोगो हि यथा व्याप्तिग्रहणं विधीयते सा च तावन्मात्रेण व्युत्पन्नैरवधार्यते'' ॥92॥

अन्वयार्थ :-

हि = क्योंकि

यथा = जैसे

व्याप्तिग्रहणं = व्याप्ति का ग्रहण

विधीयते = किया जाये

हेतुप्रयोगः = उस प्रकार से हेतु प्रयोग किया जाता है

सा च	=	वह व्याप्ति
तावन्मात्रेण	=	उतने मात्र से
व्युत्पन्नैः	=	विद्वानों के द्वारा
अवधार्यते	=	निश्चय कर ली जाती है।

Meaning:-

In the employment of Hetu, the use of Vyāpti [universal concomitance] is made. That [Vyapti] is understood by the persons conversant [with the process of inference] from it [Viz. Hetu] (without use of Udāharaṇa etc)

सूत्रार्थ :-

जिसकी साध्य के साथ व्याप्ति निश्चित है ऐसे ही हेतु का प्रयोग किया जाता है, अतः उतने मात्र से अर्थात् उस प्रकार के हेतु के प्रयोग से दृष्टान्तादिक के बिना ही व्युत्पन्न पुरुष व्याप्ति का निश्चय कर लेते है।

❖ साध्य के साथ जिसकी व्याप्ति बन जाए वह हेतु का प्रयोग ही पर्याप्त है। विद्वान लोग उतने मात्र से ही अर्थ का निश्चय कर लेते हैं। वह व्याप्ति 'तथोपपत्ति' या 'अन्यथानुपपत्ति' इन दो हेतुओं से ग्रहण कर ली जाती है। इतने मात्र हेतु के प्रयोग से ही जब अनुमान प्रमाण का निश्चय हो जाता है तो न्याय निपुण पुरुषों को उदाहरण की कोई जरूरत ही नहीं पड़ती है।

❖ दृष्टान्त - एक बार चारित्र भूषण नामक मुनि ने श्री पार्श्वनाथ भगवान् के समीप अपराह्न की देववन्दना करते हुए 'देवागम स्तोत्र' पढ़ा, तभी पात्रकेसरी के साथ सभी प्रधान महापण्डित संध्यावन्दना करके श्री पार्श्वनाथ के दर्शन करने के लिए आए। देवागम स्तवन को सुनकर पात्र केसरी ने मुनि को पूछा हे भगवन्! इसका अर्थ बतलाइए। भगवन् मुनि ने कहा - मैं इसका अर्थ नहीं जानता हूँ। तब पात्रकेसरी ने कहा- कृपया आप पुनः पढ़ो। तब मुनि ने विशेष पदों पर रुक-रुक कर

देवागम स्तवन पढ़ा। पात्रकेसरी को एक संस्थ में (एक बार में) सहज ही समस्त देवागम हृदयंगम होने से धीरे-धीरे उसका अर्थ भी हृदय में समा गया। दर्शनमोहनीय कर्म के क्षयोपशम से उत्पन्न तत्त्वार्थ श्रद्धान से यह निश्चय किया कि इसमें प्रतिपादित जीव, अजीव आदि वस्तु स्वरूप ही परमार्थ है, अन्य नहीं। इस प्रकार घर में जाकर रात्रि में वस्तु स्वरूप का विचार करते रहे तो उन्हें अनुमान के विषय में संशय उत्पन्न हुआ। यहाँ जीवादि वस्तु स्वरूप का प्रतिपादन है, तत्त्वज्ञान ही यह प्रमाण है। यह प्रमाण अनुमान का लक्षण है। यह जैनमत में किस प्रकार संभव है, इस प्रकार बार-बार संशय करते हुए पद्मावती देवी का आसन कम्पायमान हुआ, देवी ने आकर कहा - हे पात्रकेसरी! प्रातः श्री पार्श्वनाथ भगवान् के दर्शन से अनुमान के लक्षण के लक्षण का निश्चय होगा ऐसा कहकर श्री पार्श्वनाथ के फणमण्डप पर अनुमान के लक्षण का श्लोक लिखा - अन्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्। नान्यथानुपपन्नत्वं यत्र तत्र त्रयेण किम्॥

अर्थात् - पक्ष धर्मत्व, सपक्ष सत्त्व और विपक्षात् व्यावृत्ति रूप हेतु की त्रैरूपता से क्या ? जब अन्यथानुपपन्नत्व हेतु ही समर्थ है और जहाँ अन्यथानुपपन्नत्व हेतु नहीं वहाँ उक्त तीन हेतुओं से क्या ? इस प्रकार पहले तो रात्रि में देवी का दर्शन होने पर जैन मत में अतिशय रुचि प्रकट हुई। तदुपरान्त प्रातः भगवान के दर्शन करते हुए फणामण्डप पर अनुमान लक्षण वाले श्लोक के दर्शन से लक्षण का निश्चय हो जाने से शरीर पुलकित हुआ और मन में हर्ष हुआ।

दृष्टान्त आदि के प्रयोग की आवश्यकता

''तावता च साध्यसिद्धिः'' ॥93॥

अन्वयार्थ :-

तावता	=	उतने मात्र से
च	=	ही
साध्य-	=	साध्य की

सिद्धिः	=	सिद्धि होती है

Meaning:-

The Sādhya is established from this [viz. Hetu] only.

सूत्रार्थ :-

उतने मात्र से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है

❖ साध्य की सिद्धि के लिए ऐसे अबाधित हेतु का प्रयोग ही पर्याप्त है।

पक्ष का प्रयोग आवश्यक है

"तेन पक्षस्तदाधार-सूचनायोक्तः" ॥94॥

तेन	=	इसी कारण से
पक्षः	=	पक्ष का
तत्-	=	उस
आधार-	=	आधार की
सूचनाय	=	सूचना के लिए
उक्तः	=	कहा गया है

Meaning:-

So it has been mentioned that it is necessary to mention Pakṣa to indicate the Ādhāra [abode] of Hetu consisting of universal concomitance.

सूत्रार्थ :-

इसी कारण से साध्य के बिना नहीं होने वाले साधन का आधार सूचित करने के लिए पक्ष कहा जाता है।

❖ बौद्ध लोग एकान्त रूप से हेतु मात्र का प्रयोग ही करना पर्याप्त समझते

हैं, पक्ष आदि का नहीं, उन्हीं के मत का निराकरण करने के लिए यह सूत्र आया है।

❖ चूँकि यथोक्त साधन (हेतु) से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है इसलिए उस साधन का आधार सूचित करने के लिए अर्थात् वह साधन कहाँ रहता है ? यह बताने के लिए पक्ष का प्रयोग किया जाता है।

❖ पक्ष प्रयोग के बिना साधन की नियत आधारता का निश्चय नहीं हो पाता है।

❖ अग्नि के साथ व्याप्ति रखने वाले धुँए का आधार क्या है, वह धुँआ कहाँ है ? पर्वत में अथवा रसोईघर में। इस आधार की सूचना के लिए पक्ष का कथन भी किया जाता है।

❖ कार्य व कारण हेतु बताने वाले पिछले सभी उदाहरणों में आपने देखा होगा कि अत्र, अस्मिन् आदि पदों का प्रयोग किया है। यह पद ही पक्ष की सूचना देते हैं। जैसे सूत्र 78 में 'नास्त्यत्र धूमोऽनग्नेः'- यहाँ धूम नहीं है, तो 'यहाँ' कहने से किसी आधार को कहा है। वह आधार रसोईघर भी हो सकता है, कोई पर्वत आदि भी हो सकता है। यदि बिना पक्ष के वाक्य प्रयोग किया जाय तो कैसा लगेगा ? नास्ति धूमोऽनग्नेः। अर्थात् धुँआ नहीं है, अग्नि नहीं होने से। तो इस वाक्य में अधूरापन स्पष्ट समझ आ रहा है और ऐसा भी लगता है कि साध्य का सर्वथा अभाव है। 'धुँआ नहीं है' तो वह धुँआ कहाँ नहीं है ? यहाँ या वहाँ ? यदि यहाँ कह देते हैं तो इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस स्थान पर नहीं है, अन्यत्र हो सकता है। इसलिए हेतु के साथ पक्ष प्रयोग अवश्य करना चाहिए।

आगम प्रमाण का स्वरूप

"आप्तवचनादिनिबन्धनमर्थज्ञानमागमः" ॥95॥

आप्तवचनादि-	=	आप्त के वचन आदि के
निबन्धनम्	=	निमित्त से होने वाले
अर्थज्ञानम्	=	पदार्थ ज्ञान को

आगमः	=	आगम कहते है।

Meaning:-

Āgama is knowledge derived from words etc. of a reliable person.

सूत्रार्थ :-

आप्त के वचन आदि के निमित्त से होनेवाले अर्थ-ज्ञान को आगम कहते है।

❖ अठारह दोषों से रहित अर्हन्त भगवान आप्त कहलाते है।

❖ आप्त के वचन आदि जिस अर्थज्ञान में कारण है, वह आगम है।

❖ वही वचन प्रमाण हैं जो आप्त पुरुष के कहे हों । आप्त की प्रामाणिकता होने से आगम की प्रामाणिकता होती है। इसलिए आगम भी प्रमाण है।

❖ आगम प्रमाण परोक्ष प्रमाण है।

❖ भगवान् के मुख कमल से दिव्यध्वनि के द्वारा जो कहा जाता है वह अर्थश्रुत कहलाता है, इसलिए सूत्र में अर्थज्ञान को आगम कहा है।

❖ अर्थज्ञान को बुद्धि में अवधारित करके गणधर परमेष्ठी जो ग्रन्थ रचना करते हैं वह शब्दश्रुत कहलाता है।

❖यह शब्दश्रुत भी प्रमाण है, यही बताने के लिए आगे का सूत्र कहते हैं।

शब्द से पदार्थ ज्ञान होता है

''सहजयोग्यतासंकेतवशाद्धि शब्दादयो वस्तुप्रतिपत्तिहेतवः''

॥96॥

अन्वयार्थ :-

हि	=	क्योंकि
सहजयोग्यता-	=	स्वभावभूत योग्यता के होने पर
संकेतवशात्	=	संकेत के वश से

शब्दादयः	=	शब्दादि
वस्तु-	=	वस्तु का
प्रतिपत्ति-	=	ज्ञान कराने के लिए
हेतवः	=	कारण हैं

Meaning:-

Words etc. (signs, symbols and other things of like nature) are causes of knowledge of things through their inherent power in connoting things.

सूत्रार्थ :-

सहज योग्यता के होने पर संकेत के वश से शब्दादिक वस्तु के ज्ञान कराने के कारण हैं।

❖ शब्द में अर्थ बताने की एक सहज योग्यता होती है। शब्द और अर्थ का यह सम्बन्ध ही वाच्य-वाचक सम्बन्ध कहलाता है। इसे ही अभिधेय-अभिधान सम्बन्ध भी कहते हैं।

❖ वाच्य-वाचक सम्बन्ध ही संकेत है।

❖ आदि शब्द से अंगुली से इशारा करना आदि मौन संकेत भी ग्रहण करना है क्योंकि इन संकेतों से भी वस्तु का ज्ञान होता है।

शब्द से ज्ञान होने का उदाहरण

''यथा मेर्वादयःसन्ति''॥97॥

अन्वयार्थ :-

यथा	=	जैसे
मेरु-	=	सुमेरु पर्वत
आदयः	=	आदि

सन्ति = हैं।

Meaning:-

As for example "The meru etc. exist"

सूत्रार्थ :-

जैसे मेरु पर्वतादि है।

❖ जैसे मेरु आदिक शब्द अपने वाच्यभूत अर्थ के ज्ञान कराने में कारण है।

तृतीय परिच्छेद का सारांश

परीक्षा मुख ग्रन्थ का यह तृतीय अध्याय इस ग्रन्थ का सर्वाधिक सूत्र वाला अध्याय है। इस अध्याय में 97 सूत्र हैं। पुराने गुच्छक में इस ग्रन्थ के सूत्रों का संकलन किया गया है उसमें 96 सूत्र हैं। उस गुच्छक में 7,8 दो सूत्रों को एक सूत्र मान कर रखा है। इतना ही अन्तर है।

परोक्ष प्रमाण के मूल भेद स्मृति आदि 5 हैं। इस अध्याय में परोक्ष प्रमाण सभी भेदों का वर्णन संक्षिप्त है, मात्र विस्तार अनुमान प्रमाण का है। सूत्र 9 से अनुमान का स्वरूप बताकर हेतु, अविनाभाव सम्बन्ध और साध्य का स्वरूप दिखलाया है। अनुमान की सिद्धि के लिए मुख्य रूप से पक्ष और हेतु की ही आवश्यकता है अन्य उदाहरण आदि की नहीं। इस बात का सविस्तार वर्णन किया गया है। अन्त में बालबुद्धिजनों को समझाने के लिए अनुमान के पाँच अंगों की स्वीकारता की और दृष्टान्त, उपनय, निगमन आदि का कथन किया है। स्वार्थ और परार्थ के भेद से अनुमान के दो भेद हैं। वचन भी परार्थ अनुमान का हेतु है। इन हेतुओं का वर्णन उदाहरण सहित सूत्र 53 से प्रारम्भ करके 93 सूत्र तक किया है। इन हेतुओं के विधि, निषेधात्मक अनेक भेदों का वर्णन बड़ा ही रोचक है। अन्त में निपुण पुरुष के लिए मात्र दो ही हेतुओं का प्रयोग उचित बताया है। सशक्त और अकाट्य हेतु का प्रयोग करना ही वादी की जीत है। इसी से साध्य की सिद्धि होती है इसलिए इन अनेक हेतुओं का प्रयोग करके जब बुद्धि कुशल हो जाती है तब अन्यथा उत्पत्ति और अन्यथा अनुत्पत्ति इन दो हेतुओं के प्रयोग से ही साध्य की सिद्धि हो जाती है।

इस तरह पाठक की बुद्धि इन हेतु प्रयोगों के अभ्यास से अपने आप तीक्ष्ण हो जाती है और वह न्याय ग्रन्थों में प्रवेश कर सकता है। अन्त में आगम प्रमाण को दिखाकर परोक्ष प्रमाण का प्रकरण पूर्ण हुआ है।

卐

हेतु

- उपलब्धि
  - विधि रूप (अविरुद्ध उपलब्धि)
    1. अविरुद्धव्याप्य उपलब्धि (सूत्र 61)
    2. अविरुद्ध कार्य उपलब्धि (सूत्र 62)
    3. अविरुद्ध कारण उपलब्धि (सूत्र 63)
    4. अविरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि (सूत्र 64)
    5. अविरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि (सूत्र 65)
    6. अविरुद्ध सहचर उपलब्धि (सूत्र 66)
  - प्रतिषेध रूप (विरुद्ध उपलब्धि)
    1. विरुद्ध व्याप्य उपलब्धि(सूत्र 68)
    2. विरुद्ध कार्य उपलब्धि (सूत्र 69)
    3. विरुद्ध कारण उपलब्धि (सूत्र 70)
    4. विरुद्ध पूर्वचर उपलब्धि (सूत्र 71)
    5. विरुद्ध उत्तरचर उपलब्धि (सूत्र 72)
    6. विरुद्ध सहचर उपलब्धि (सूत्र 73)
- अनुपलब्धि
  - प्रतिषेध रूप (अविरुद्ध अनुपलब्धि)
    1. अविरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि (सूत्र 75)
    2. अविरुद्ध व्यापक अनुपलब्धि (सूत्र 76)
    3. अविरुद्ध कार्य अनुपलब्धि (सूत्र 77)
    4. अविरुद्ध कारण अनुपलब्धि (सूत्र 78)
    5. अविरुद्ध पूर्वचर अनुपलब्धि (सूत्र 79)
    6. अविरुद्ध उत्तरचर अनुपलब्धि (सूत्र 80)
    7. अविरुद्ध सहचर अनुपलब्धि (सूत्र 81)
  - विधि रूप (विरुद्ध अनुपलब्धि)
    1. विरुद्ध कार्य अनुपलब्धि (सूत्र 83)
    2. विरुद्ध कारण अनुपलब्धि (सूत्र 84)
    3. विरुद्ध स्वभाव अनुपलब्धि (सूत्र 85)

चतुर्थः परिच्छेदः

प्रमाण का विषय

''सामान्यविशेषात्मा तदर्थो विषयः'' ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :-

सामान्य-	=	सामान्य
विशेष-	=	विशेष
आत्मा	=	स्वरूप
तदर्थः	=	उस प्रमाण से गृहीत पदार्थ है
विषयः	=	वही विषय है

Meaning:-

The subject matter of it [Pramāṇa] is viṣaya of two kinds characterised by Sāmānya and vīśeṣa.

सूत्रार्थ :-

सामान्य-विशेषात्मक पदार्थ प्रमाण का विषय है

❖ सामान्य विशेष आत्मा - यह प्रमाण से गृहीत पदार्थ का विषय है। यहाँ 'आत्मा' शुद्ध स्वरूप अथवा स्वभाव अथवा तदात्मकता को बताने के लिए है। जैसे हम कहते हैं कि यह पुद्‌गलात्मक पदार्थ है तो उसका अर्थ होता है इस पदार्थ का स्वरूप पुद्‌गलमय है। यह पापात्मा है तो इसका अर्थ है कि यह व्यक्ति पापमय है। इसी प्रकार यहाँ कहा है कि पदार्थ सामान्य विशेषात्मा है तो इसका अर्थ है कि पदार्थ सामान्य विशेष स्वभाव वाला है। वह पदार्थ न मात्र सामान्य स्वभाव वाला है, न मात्र विशेष स्वभाव वाला है और न मात्र स्वतन्त्र रूप से उभयरूप है किन्तु दोनों धर्ममय है।

अनेकान्तात्मक वस्तु के समर्थन में दो हेतु

''अनुवृत्तव्यावृत्तप्रत्ययगोचरत्त्वात् पूर्वोत्तराकार-परिहारावाप्ति-स्थितिलक्षणपरिणामेनार्थक्रियोपपत्तेश्च'' ॥ 2 ॥

अन्वयार्थ :-

अनुवृत्त-	=	अनुवृत्त
व्यावृत्त-	=	व्यावृत्त
प्रत्यय-	=	ज्ञान का
गोचरत्वात्	=	विषय होने से
च	=	और
पूर्व-	=	पहले तथा
उत्तर-	=	बाद की
आकार-	=	आकृति का
परिहार-	=	निराकरण तथा
अवाप्ति-	=	प्राप्ति और
स्थिति लक्षण-	=	ध्रुवरूपता
परिणामेन	=	परिणाम के साथ
अर्थक्रिया-	=	अर्थक्रिया की
उपपत्तेः	=	प्राप्ति होने से ।

Meaning:-

As there is attainment of the object (as a result of knowledge) from signs of changes from its original state to a later state preserving its essential characteristics and from our idea of general and special characterstics.

सूत्रार्थ :-

वस्तु सामान्य-विशेषादि अनेक धर्मवाली है, क्योंकि वह अनुवृत्तप्रत्यय और व्यावृत्तप्रत्यय का विषय है तथा पूर्व आकार का परिहार, उत्तर आकार की प्राप्ति और स्थिति लक्षण परिणाम के साथ उसमें अर्थक्रिया पाई जाती है।

❖ प्रत्येक वस्तु सामान्य विशेषात्मक, नित्यानित्यात्मक, द्रव्यपर्यायात्मक अनेक धर्म वाली होती है।

❖ अनेक धर्मात्मक वस्तु की सिद्धि दो हेतुओं से होती है।

1. अनुवृत्त - व्यावृत्त प्रत्यय के द्वारा -

❖ सत्ता सामान्य की या सदृश आकार प्रतीति अनुवृत्त प्रत्यय का विषय है।

❖ जैसे यह गौ, यह भी गौ, यह भी गौ, तो यहाँ सामान्य धर्म को बताने वाला अनुवृत्त प्रत्यय है।

❖ विशिष्टता की प्रतीति या विशेष आकार की प्रतीति व्यावृत्त प्रत्यय का विषय है।

❖ जैसे यह काली गाय है, यह नील गाय है, यह चितकबरी गाय है तो यहाँ विशेष धर्म को बताने वाला व्यावृत्त प्रत्यय है।

2. उत्पाद, व्याय, ध्रौव्य के द्वारा- पूर्व-आकार का परिहार [छोड़ना] - व्यय है। उत्तर (अगले) आकार की प्राप्ति होना उत्पाद है। और स्थिति लक्षण वाला बने रहना ध्रौव्य है।

❖ इस तरह इन दोनों हेतुओं से जो वस्तु युक्त होती है वही अर्थक्रिया करने में समर्थ होती है।

सामान्य के भेद

''सामान्यं द्वेधा तिर्यगूर्ध्वताभेदात्'' ॥3॥

अन्वयार्थ :-

सामान्यं	=	सामान्य धर्म
द्वेधा	=	दो प्रकार का है।
तिर्यक्-	=	तिरछा और
ऊर्ध्वता-	=	ऊर्ध्वपना के
भेदात्	=	भेद से

Meaning:-

Sāmānya is of two kinds being divided into Tiryak (sāmānya) and Ūrdhvatā (Sāmānya).

सूत्रार्थ :-

सामान्य के दो भेद हैं तिर्यक् सामान्य और ऊर्ध्वता सामान्य।

तिर्यक् सामान्य का स्वरूप

''सदृशपरिणामस्तिर्यक् खण्डमुण्डादिषु गोत्ववत्'' ॥4॥

अन्वयार्थ :-

सदृशपरिणामः	=	सदृश परिणाम को
तिर्यक्	=	तिर्यक् सामान्य कहा है।
खण्ड-	=	खण्डी
मुण्डादिषु	=	मुण्डी आदि गायों में
गोत्ववत्	=	गोपना की तरह

Meaning:-

Tiryak (ṡāmānya) is the same modification such as Khaṇḍa Muṇḍa etc. in the condition of a cow.

सूत्रार्थ :-

सदृश अर्थात् सामान्य परिणाम को तिर्यक् सामान्य कहते हैं जैसे खण्डी-मुण्डी आदि गायो में गोपना सामान्य रूप से रहता है।

❖ एक जाति में समान धर्मिता होना तिर्यक् सामान्य कहलाता है।

❖ जैसे जीव जाति में जानना देखना सामान्य धर्म है। मनुष्य जाति में मनुष्यत्व सामान्य धर्म है, पशु में पशुत्व सामान्य धर्म है, गौ में गौत्व सामान्य धर्म है। इस तरह सामान्य धर्मिता अपेक्षा भेद से ग्रहण करना चाहिए।

ऊर्ध्वता सामान्य का स्वरूप

''परापरविर्वतव्यापिद्रव्यमूर्ध्वता मृदिव स्थासादिषु''॥5॥

अन्वयार्थ :-

पर-	=	पूर्व
अपर-	=	उत्तर
विवर्त-	=	पर्याय में
व्यापि-	=	व्याप्त रहने वाले
द्रव्यम्	=	द्रव्य को
ऊर्ध्वता	=	ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं।
मृदिव	=	जैसे मिट्टी का
स्थासादिषु	=	स्थास आदि पर्यायों में पाया जाना।

Meaning:-

Ūrdhvatā sāmānya is a thing which remains the same through changes such as earth in its. (modifications) sthāsa etc.

सूत्रार्थ :-

पूर्व और उत्तर पर्यायों में रहने वाले द्रव्य को ऊर्ध्वता सामान्य कहते हैं। जैसे स्थास, कोश, कुशूल आदि घट की पर्यायों में मिट्टी रहती है।

❖ उत्पाद, व्यय रूप पर्यायों में जो ध्रौव्य धर्म बना रहता है। वही यहाँ ऊर्ध्वता सामान्य का लक्षण है।

सामान्य

तिर्यक्	ऊर्ध्वता
(खण्डी, मुण्डी गायों में गोपना)	(स्थास, कोश आदि में मिट्टी पना)

विशेष का प्रकरण

''विशेषश्च''॥6॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
विशेषः	=	विशेष भी जानना

Meaning:-

Viṡesa (is) also (of two kinds)

सूत्रार्थ :-

विशेष के भी दो भेद हैं।

विशेष के भेद

''पर्यायव्यतिरेकभेदात्''॥7॥

पर्याय -	=	पर्याय और
व्यतिरेक-	=	व्यतिरेक के

भेदात्	=	भेद से

Meaning:-

Being divided into paryāya and vyatireka.

सूत्रार्थ :-

पर्याय और व्यतिरेक के भेद से विशेष दो प्रकार का है

विशेष

1.पर्याय विशेष (हर्ष, विषाद) — **2. व्यतिरेक विशेष** (गाय, भैंस)

पर्याय विशेष का स्वरूप

''एकस्मिन्द्रव्ये क्रमभाविनः परिणामाः पर्यायाः आत्मनि हर्षविषादादिवत्'' ॥8॥

अन्वयार्थ :-

एकस्मिन् द्रव्ये	=	एक द्रव्य में
क्रमभाविनः	=	क्रम से होने वाले
परिणामाः	=	परिणाम
पर्यायाः	=	पर्याय कहलाते हैं।
आत्मनि	=	आत्मा में
हर्षविषादिवत्	=	हर्ष और विषाद के समान।

Meaning:-

Paryāyās are modification in sequence in a single substance e.g. joy and grief in oneself.

सूत्रार्थ :-

एक द्रव्य में क्रम से होने वाले परिणामों को पर्याय कहते हैं। जैसे – आत्मा में हर्ष, विषाद आदि।

व्यतिरेक विशेष का स्वरूप

''अर्थान्तरगतो विसदृशपरिणामो व्यतिरेको गोमहिषादिवत्'' ॥9॥

अन्वयार्थ :-

अर्थान्तरगतः	=	अन्य पदार्थ में गया हुआ
विसदृश–	=	विसदृश
परिणामः	=	परिणाम
व्यतिरेकः	=	व्यतिरेक है।
गो–	=	गाय,
महिषादिवत्	=	भैसा आदि की तरह।

Meaning:-

Vyatirekas are different modifications in different objects such as a cow and buffalo etc.

सूत्रार्थ :-

एक पदार्थ की अपेक्षा अन्य पदार्थ में रहने वाले विसदृश परिणाम को व्यतिरेक कहते हैं जैसे – गाय, भैंस आदि में विलक्षणपना

चतुर्थ परिच्छेद का सारांश

इस अध्याय में प्रमाण के विषयभूत पदार्थ का वर्णन किया गया है। पदार्थ, वस्तु, अर्थ एक ही अर्थ में जानना। वह वस्तु सामान्य विशेषात्मक होती है। सामान्य और विशेष प्रत्येक पदार्थ के ऐसे गुणधर्म हैं जो सभी में रहते हैं। जगत् का कोई भी पदार्थ यदि अस्तित्व में है तो वह सामान्य, विशेष दोनों धर्मों को धारण

करने वाला होता है। इस सामान्य गुणधर्म के तिर्यक् और ऊर्ध्वता के भेद से दो भेद हैं और विशेष गुण धर्म के पर्याय और व्यतिरेक के भेद से दो भेद हैं।

सामान्य गुणधर्म में अभेद, का अन्वय का ज्ञान कराने का स्वभाव होता है। यह वही है, यह वही है, इस प्रकार के अन्वय रूप ज्ञान से पदार्थ में अभेद का ज्ञान होता है। इससे पदार्थ सामान्य रूप जानने में आता है।

विशेष गुणधर्म में भेद का, व्यतिरेक का ज्ञान कराने का स्वभाव होता है। यह दूसरा है या यह पूर्व पर्याय से भिन्न पर्याय है, इस प्रकार के पृथक् रूप विशेष ज्ञान से पदार्थ में भेद का ज्ञान होता है। इससे पदार्थ विशेष रूप जानने में आता हैं।

यह सामान्य और विशेष गुणधर्म प्रत्येक पदार्थ में एक दूसरे गुण की अपेक्षा रखते हैं। इसके लिए आचार्य समन्तभद्र स्वामी ने ज्ञान का उदाहरण दिया है। 'यथा प्रमाणं भुवि बुद्धिलक्षणम्।' स्वयंभूस्तोत्र 13/3। अर्थात् जैसे ज्ञान में स्व, पर प्रकाशत्व दो धर्म स्वतः सिद्ध हैं उसी प्रकार पदार्थ में सामान्य रूपता और विशेष रूपता ये दोनों धर्म स्वतः सिद्ध हैं। यह वस्तु का स्वभाव है, इसे अन्यथा नहीं किया जा सकता है।

卐

पञ्चमः परिच्छेदः

प्रमाण के फल का स्वरूप

''अज्ञाननिवृत्तिर्हानोपादानोपेक्षाश्च फलम्''॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :-

फलम्	=	प्रमाण का फल
अज्ञाननिवृत्तिः	=	अज्ञान की निवृत्ति
च	=	तथा
हान-	=	त्याग
उपादान-	=	ग्रहण और
उपेक्षाः	=	उदासीनता है।

Meaning:-

The result is the dispelling of false knowledge and leaving (the undesirable things) acquirement (of desirable things) and indifference (to other things)

सूत्रार्थ :-

अज्ञान की निवृत्ति, त्याग, ग्रहण और उदासीनता ये प्रमाण के फल हैं।

❖ प्रमाण के दो फल हैं - साक्षात् फल, परम्परा फल

❖ जो फल तत्काल प्राप्त हो वह साक्षात् फल है।

❖ जो फल क्रमवारी से प्राप्त हो वह परम्परा फल है।

❖ **न्याय के अनुसार** -

1. अज्ञान का दूर होना - यह प्रमाण का साक्षात् फल है।
2. त्याग, ग्रहण, उदासीन होना - यह प्रमाण का परम्परा फल है।

❖ **सिद्धान्त के अनुसार** –

1. अज्ञान दूर होना यानि सम्यग्ज्ञान की प्राप्ति होना – यह परीक्षा मुख या अन्य न्याय ग्रन्थों को पढ़ने का तात्कालिक फल है।

2. हान–पाप का त्याग, उपादान – व्रत का ग्रहण यह व्यवहार सम्यक् चारित्र है। इसे अपहृत संयम कहते हैं। व्यवहार सम्यक् चारित्र की प्राप्ति होना न्याय ग्रन्थ को पढ़ने का परम्परा फल है।

3. व्यवहार चारित्र को छोड़कर उपेक्षा वृत्ति अपनाना निश्चय चारित्र है जिसे उपेक्षा संयम भी कहते हैं। यह प्रमाण का अन्तिम फल है।

❖ प्रमाण का अन्तिम फल उपेक्षा है। यह उपेक्षा ही रागद्वेष से रहित मध्यस्थ वृत्ति है। इस तरह प्रमाण का फल अध्यात्म (आत्मा) में लीन होना है अथवा वीतराग दशा को प्राप्त होना है।

❖ प्रमाण के कुल फल चार हैं। अज्ञान निवृत्ति, हान, उपादान और उपेक्षा।

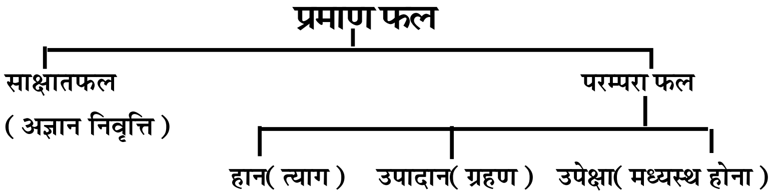

❖ जब हम प्रमाण के द्वारा वस्तु के यथार्थ स्वरूप को जानते हैं तो उसी समय उस पदार्थ सम्बन्धी अज्ञान दूर हो जाता है। जिस वस्तु से भ्रम, संशय, अज्ञान आदि उत्पन्न होता था उस वस्तु का त्याग हो जाता है। जो पदार्थ आत्म हित में है उसका ग्रहण कर लेता है, शेष बचे सभी पदार्थों के प्रति उपेक्षा (उदासीन) भाव रखता है। इस तरह से समझने पर यह न्याय ग्रन्थ सम्यग्दर्शन पूर्वक सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्र की उत्पत्ति का कारण बनता है।

❖ **अध्यात्म के अनुसार** – अशुभोपयोग से छुड़ाकर, शुभोपयोग दिलाकर और अन्त में शुद्धोपयोग में लीन करा देता है। उपेक्षा शुद्धोपयोग में भी होती है और

शुद्धोपयोग के फलस्वरुप केवलज्ञान में भी होती है। इस तरह प्रमाण का फल परम्परा से केवलज्ञान सिद्ध होता है।

प्रमाण के फल की विशेषता

"प्रमाणादभिन्नं भिन्नं च" ॥2॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाणात्	=	प्रमाण से
अभिन्नं	=	अभिन्न
च	=	और
भिन्नं	=	भिन्न है।

Meaning:-

(The result) is different and not different (in another sense) from the Pramāṇa.

सूत्रार्थ :-

प्रमाण का फल प्रमाण से कथञ्चित् अभिन्न है और कथञ्चित् भिन्न है।

❖ जिस तरह द्रव्य और गुण में कथंचित् भिन्नता और कथंचित् अभिन्नता होती है उसी प्रकार यहाँ जानना।

❖ जिस आत्मा में प्रमाण होता है उसी में प्रमाण का फल प्राप्त होता है अन्यत्र नहीं, इस अपेक्षा से कथंचित् अभिन्नता है।

❖ संज्ञा, संख्या, स्वरूप, परिणाम और प्रयोजन की अपेक्षा कथंचित् भिन्नता है।

❖ **संज्ञा की अपेक्षा** – नाम भेद है। प्रमाण और प्रमाण का फल इस तरह दोनों के नाम भिन्न होने से कथंचित् भिन्नता है।

❖ **संख्या की अपेक्षा** – प्रमाण की संख्या प्रत्यक्ष और परोक्ष के भेद से दो

है जब कि प्रमाण के फल की संख्या साक्षात् और परम्परा के भेद से दो है। सभी उपभेदों की अपेक्षा (सांव्यव हारिक प्रत्यक्ष, मुख्य प्रत्यक्ष, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान, आगम) प्रमाण की संख्या 7 होती है। जब कि प्रमाण फल की 4 है।

❇ **स्वरूप की अपेक्षा** – प्रमाण का स्वरूप प्रथम परिच्छेद के प्रथम सूत्र में बताया है। और प्रमाण फल का स्वरूप पंचम परिच्छेद के प्रथम सूत्र में बताया है।

❇ **परिणाम की अपेक्षा** – प्रमाण करणरूप परिणाम है और फल क्रिया रूप परिणाम है।

❇ **प्रयोजन की अपेक्षा** – प्रमाण का प्रयोजन पदार्थ संसिद्धि तथा प्रमाण फल का प्रयोजन उपेक्षा है।

प्रमाण का फल अभिन्न किस तरह होता है?

''यः प्रमिमीते स एव निवृत्ताज्ञानो जहात्यादत्ते उपेक्षते चेति प्रतीतेः''

॥3॥

अन्वयार्थ :–

यः	=	जो
प्रमिमीते	=	जानता है
सः	=	वह
एव	=	ही
निवृत्ताज्ञानः	=	अज्ञान से निवृत्त होता है
जहाति	=	त्यागता है
आदत्ते	=	ग्रहण करता है
च	=	और
उपेक्षते	=	उपेक्षा करता है
इति	=	इस प्रकार

प्रतीतेः	=	प्रतीति से सिद्ध है

Meaning:-

He who takes cognizance, becomes free from false knowledge and rejects (undesirable objects) selects (desirable objects) or becomes indifferent.

सूत्रार्थ :–

जो प्रमाण से पदार्थ को जानता है, उसी का अज्ञान दूर होता है, वही अनिष्ट वस्तु का त्याग करता है, इष्ट वस्तु को ग्रहण करता है तथा अन्य की उपेक्षा करता है इस प्रकार की प्रतीति होने से सिद्ध है कि प्रमाण से फल अभिन्न है।

❇ एक ही आत्मा में अज्ञान निवृत्ति के साथ त्याग, ग्रहण और उपेक्षा की क्रिया घटित होती है इसलिए प्रमाण और प्रमाण का फल आत्मा से कथंचित् अभिन्न है।

❇ इस सूत्र में प्रमिमीते, जहाति, आदत्ते, उपेक्षते इन क्रिया पदों का प्रयोग ही यह दर्शाता है कि एक ही आत्मा में यह फल क्रिया रूप से प्राप्त होते हैं।

❇ उपेक्षा भी एक क्रिया है। सिद्ध भगवान् इस अपेक्षा से क्रियावान् सिद्ध होते हैं। एकान्त से वह निष्क्रिय ही नहीं है।

पञ्चम परिच्छेद का सारांश

इस अध्याय में प्रमाण के फल का वर्णन मात्र 3 सूत्रों में किया गया है। प्रमाण से प्रमाण का फल कथंचित् भिन्न होता है और कथंचित् अभिन्न होता है। अन्य दार्शनिक प्रमाण से प्रमाण फल को या तो एकान्त रूप से भिन्न मानते हैं या अभिन्न मानते हैं इसी का स्पष्टीकरण इस अध्याय में है।

卐

षष्ठः परिच्छेदः

तदाभास का लक्षण

''ततोऽन्यत्तदाभासम्'' ॥ 1 ॥

अन्वयार्थ :-

ततः	=	उससे
अन्यत्	=	अन्य
तदाभासम्	=	तदाभास है

Meaning:-

The opposite of it, is Ābhāsa of the same.

सूत्रार्थ :-

उससे अन्य जो कुछ भी है वह तदाभास है।

❖ उससे किससे ? अभी तक जो बताया है उससे। अर्थात् प्रमाण के स्वरूप, संख्या , विषय और फल से विपरीत जो कुछ भी है वह तदाभास है।

❖ **स्वरूपाभास** - जिसमें प्रमाण के स्वरूप का वर्णन अन्य या विपरीत रूप से हो वह स्वरूपाभास है।

❖ **भेदाभास** - जिसमें प्रमाण के भेदों का वर्णन विपरीत रूप से हो वह प्रमाण भेदाभास है।

❖ **संख्याभास** - प्रमाण की यथार्थ संख्या से अन्य कही गई संख्या संख्याभास है।

❖ **विषयाभास** - प्रमाण के यथार्थ विषय से विपरीत अन्य विषय विषयाभास है।

❖ **फलाभास** - प्रमाण के यथार्थ फल से अन्य फल फलाभास है।

❖ स्वरूपाभास में प्रमाण के लक्षण के विपरीत लक्षण का कथन होता है किन्तु भेदाभास में प्रमाण के प्रत्यक्ष, परोक्ष आदि भेदों, उपभेदों का विपरीतपना कहा जाता है इसलिए इन दोनों में अन्तर है। अतः यहाँ भेदाभास को अलग से लिखा है। इसके पूर्व किसी ने भेदाभास को अलग से नहीं लिया है।

प्रमाण स्वरूपाभास का लक्षण

''अस्वसंविदित - गृहीतार्थदर्शनसंशयादयः प्रमाणाभासाः'' ॥ 2 ॥

अन्वयार्थ :-

अस्वसंविदित-	=	अस्वसंवेदी
गृहीतार्थ -	=	गृहीतार्थ,
दर्शन-	=	दर्शन,
संशयादयः	=	संशय आदि
प्रमाणाभासाः	=	प्रमाणाभास हैं।

Meaning:-

Pramānābhāsas (Fallacies of Pramāṇa) are non-cognizance by one's own self, knowledge of what has already been known, doubt etc.

सूत्रार्थ :-

अस्वसंविदित, गृहीतार्थ, दर्शन, संशय आदि (विपर्यय और अनध्यवसाय) को प्रमाणाभास कहते हैं।

1. अस्वसंविदित ज्ञान प्रमाणाभास है - जो ज्ञान अपने आपके द्वारा अपने स्वरूप को जानता है वह स्वसंविदित ज्ञान है। प्रमाण का स्वरूप समझाते हुए प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में जो स्वव्यवसायात्मक ज्ञान का स्वरूप बताया था उसे ही यहाँ स्वसंविदित ज्ञान कहा है। इसके विपरीत जो **नैयायिकों** का कहना है कि कोई भी ज्ञान अपने स्वरूप का अपने आप का संवेदन नहीं करता है, या अपने आप

को नहीं जानता है इसलिए ज्ञान अस्वसंविदित होता है तो उनका यह ज्ञान प्रमाणाभास है।

उन **नैयायिकों** का कहना है कि ज्ञान अपने स्वरूप को नहीं जानता है किन्तु ज्ञान के स्वरूप का संवेदन करने के लिए अन्य ज्ञान की जरूरत होती है। ऐसा अस्वसंविदित ज्ञान भला पर पदार्थ को भी कैसे जान सकता है ? इसलिए ऐसा ज्ञान प्रमाणाभास है।

2. गृहीतार्थ ज्ञान प्रमाणाभास है – पहले प्रमाण से जिस पदार्थ का ग्रहण किया था पुनः ज्ञान उसी ग्रहण किए हुए पदार्थ को ग्रहण करता है तो उसे गृहीतार्थ ज्ञान या गृहीतग्राही धारावाहिक ज्ञान कहते हैं। यह ज्ञान गृहीत अर्थ का ही पुनः पुनः धारावाहिक – निरन्तर क्रम से ग्रहण करता है। ऐसा ज्ञान प्रमाणाभास है। क्योंकि यह प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में दिए गए अपूर्व विशेषण को सार्थक नहीं करता है। प्रमाण के स्वरूप में अपूर्वार्थ को जानने वाला ज्ञान इसीलिए स्वीकारा है, क्योंकि ऐसा ही प्रत्यक्ष अनुभव में आता है। जो ज्ञान उसी–उसी पदार्थ को, पहले के ही ढंग से, उसी अर्थ को उतने ही अंशों में ग्रहण करेगा ऐसा गृहीतार्थ ज्ञान भला अज्ञान निवृत्ति फल को कैसे प्राप्त करेगा ? अनादि के अज्ञान से अयथार्थ रूप से ही पदार्थ को ग्रहण करता रहेगा तो उसे कभी भी कुछ नए फल की प्राप्ति नहीं होगी।

साधारण जन भी इस बात का अनुभव करते हैं कि एक ही ग्रन्थ को यदि बार–बार भी पढ़ते हैं तो उससे भी नए–नए अर्थ, नया–नया अनुभव ज्ञान में आता है। भगवती आराधना में आचार्य कहते हैं कि स्वाध्याय निरन्तर करने से नया–नया संवेग भाव उत्पन्न होता है। इससे सहज सिद्ध होता है कि ज्ञान का स्वभाव ही अपूर्व–अपूर्व अर्थ को ग्रहण करने का है। जो लोग ज्ञान को गृहीतार्थ मानते हैं मानो वे पिष्ट पेषण (पिसे आटे को ही पीसते रहना) ही करते रहते हैं इसलिए गृहीतार्थ ज्ञान प्रमाणाभास है।

3. दर्शन प्रमाणाभास है – यहाँ दर्शन शब्द से बौद्धों के द्वारा माना गया निर्विकल्प प्रत्यक्ष प्रमाण लिया है। बौद्ध लोग यद्यपि ज्ञान को प्रमाण मानते हैं फिर

भी वे निर्विकल्प प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानते हैं। उनके अनुसार प्रत्यक्ष प्रमाण वस्तु का निश्चायक नहीं है। ऐसा दर्शन या निर्विकल्प प्रत्यक्ष प्रमाणाभास है। प्रथम अध्याय के प्रथम सूत्र में प्रमाण का जो 'व्यवसायात्मक' विशेषण दिया गया है उसके विपरीत स्वरूप होने से दर्शन प्रमाणाभास है।

पहली बात तो यह है कि ऐसे निर्विकल्प दर्शन (प्रत्यक्ष) की उपलब्धि ही नहीं होती है। दूसरी बात ऐसे निर्विकल्प प्रत्यक्ष से कुछ भी निर्णय, निश्चय नहीं होता है। भला पदार्थ निर्णय करने में असमर्थ ऐसे अनिश्चयात्मक ज्ञान को प्रमाण कैसे कह सकते हैं ? इसलिए यह बौद्धों का दर्शन प्रमाणाभास है।

4. **संशय आदि भी प्रमाणाभास हैं** – आदि शब्द से विपर्यय, अनध्यवसाय लिए गए हैं। ये संशय आदि प्रमाणाभास हैं, यह प्रसिद्ध ही है। संशय आदि का स्वरूप पहले कहा गया है। इन तीनों में पदार्थ का निश्चयात्मक यथार्थ ज्ञान नहीं होता है इसलिए ये प्रमाणाभास हैं।

स्वरूपाभास क्यों हैं, इसका हेतु –

''स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात्'' ॥3॥

अन्वयार्थ :-

स्व–	=	अपने
विषयोपदर्शकत्व	=	विषय के निश्चयपने का
अभावात्	=	अभाव होने से।

Meaning:-

Because (such knowledge) does not establish its own object.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि वे अपने विषय का निश्चय नहीं कराते हैं।

❖ अस्वसंविदित आदि पूर्व सूत्र में कहे गए प्रमाणाभास अपने विषय का निश्चय नहीं कर सकते हैं, इसलिए प्रमाणाभास है।

❖ पूर्व सूत्र में ही इसका स्पष्टीकरण हो चुका है।

स्वरूपाभास क्यों है, इसके दृष्टान्त

"पुरुषान्तरपूर्वार्थगच्छत्तृणस्पर्शस्थाणुपुरुषादि-ज्ञानवत्"॥4॥

अन्वयार्थ :-

पुरुषान्तर-	=	दूसरे पुरुष का,
पूर्वार्थ-	=	पूर्व में जाने हुए विषय का,
गच्छत्-	=	जाते हुए पुरुष के
तृण स्पर्श-	=	तृण का स्पर्श
स्थाणुपुरुषादि-	=	स्थाणु और पुरुषादि के
ज्ञानवत्	=	ज्ञान के समान ।

Meaning:-

As (for example), The knowledge of another person, The knowledge of a thing Previously known, The knowledge of Touching grass of a Person moving, The knowledge whether this is a post or a man etc.

सूत्रार्थ :-

दूसरे पुरुष का ज्ञान, पूर्व में जाने हुए पदार्थ का ज्ञान, चलते हुए पुरुष का तृण स्पर्श का ज्ञान, स्थाणु या पुरुष आदि के ज्ञान के समान।

❖ इस सूत्र का अर्थ समझने के लिए पूर्वोक्त दोनों सूत्रों का सहारा लेकर यथा क्रम से दृष्टान्त को हेतु के साथ इस प्रकार लगाएँ -

1. अस्वसंविदितज्ञानं प्रमाणाभासः स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् पुरुषान्तरज्ञानवत्।

अस्वसंविदित ज्ञान प्रमाणभास है [पक्ष], अपने विषय का निश्चयाक नहीं होने से [हेतु], जैसे दूसरे पुरुष का ज्ञान [दृष्टान्त]।

जैसे राम को अपना ज्ञान नहीं हुआ तो वह अस्वसंविदित ज्ञान श्याम के द्वारा कैसे जाना जाएगा ? श्याम का ज्ञान भी अपना निश्चायक नहीं है। दूसरे पुरुष के ज्ञान से अपने ज्ञान में प्रामाणिकता कैसे आएगी ? इसलिए दूसरे पुरुष (श्याम) का ज्ञान जैसे प्रमाणाभास है उसी प्रकार स्वयं (राम) का ज्ञान भी है।

2. गृहीतार्थज्ञानं प्रमाणाभासः स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् पूर्वार्थज्ञानवत्।

अर्थात् गृहीतार्थ ज्ञान भी प्रमाणाभास है [पक्ष], अपने विषय का निश्चायक नहीं होने से [हेतु], पूर्वार्थज्ञान की तरह [दृष्टान्त]। जैसे पूर्व [पहले] में जाने हुए पदार्थ का ज्ञान अपने विषय का निर्णायक नहीं हुआ था उसी प्रकार गृहीतार्थ ज्ञान भी नहीं होने से गृहीतार्थज्ञान प्रमाणाभास है।

3. दर्शनं प्रमाणाभासः स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् गच्छत्तृणस्पर्शज्ञानवत्।

अर्थात्- दर्शन भी प्रमाणाभास है [पक्ष], अपने विषय का निश्चायक नहीं होने से [हेतु], जाते हुए पुरुष के तृण स्पर्शज्ञान की तरह [दृष्टान्त]

जैसे चलते हुए पुरुष के पैर में तृण स्पर्श आदि हो जाने पर उसे कुछ भी निश्चय नहीं रहता है उसी प्रकार दर्शन यानी निर्विकल्प प्रत्यक्ष प्रमाण भी अपने विषय का निश्चायक नहीं होने से प्रमाणाभास है।

4. संशयादि-ज्ञानं प्रमाणाभासः स्वविषयोपदर्शकत्वाभावात् स्थाणुपुरुषादिज्ञानवत्।

अर्थात् - संशय आदि ज्ञान भी प्रमाणाभास हैं [पक्ष], अपने विषय का निश्चायक नहीं होने से (हेतु), स्थाणुपुरुष आदि के ज्ञान की तरह [दृष्टान्त]।

जैसे कि यह स्थाणु है अथवा पुरुष है, इस ज्ञान में निश्चय नहीं है उसी प्रकार

संशय आदि ज्ञान में भी अपने विषय का निश्चय नहीं होने से वे प्रमाणाभास हैं।

सन्निकर्ष की प्रमाणाभासता का दृष्टान्त

''चक्षुरसयोर्द्रव्ये संयुक्तसमवायवच्च'' ॥5॥

अन्वयार्थ :-

द्रव्ये	=	द्रव्य में
च	=	तथा
चक्षुरसयोः	=	चक्षु और रस के
संयुक्तसमवायवत्	=	संयुक्त समवाय के समान

Meaning:-

Like Saṃjukta Samavāya of eye and Juice in a thing.

सूत्रार्थ :-

द्रव्य में चक्षु और रस के संयुक्त समवाय के समान।

❖ नैयायिक लोग इन्द्रिय और पदार्थ के संयोग को सन्निकर्ष प्रमाण मानते हैं।

❖ सन्निकर्ष के छह भेद हैं, उनमें से यहाँ संयुक्त समवाय सन्निकर्ष से प्रयोजन है। इसे ही संयोग समवाय कहते हैं।

❖ आँख से घड़े को जानना संयोग (संयुक्त) सन्निकर्ष है। क्योंकि यहाँ आँख और घड़े का संयोग हुआ है। यदि आँख से घड़े के रूप को जाना तो यह संयुक्त समवाय होता है क्योंकि आँख के साथ घड़े का संयोग सम्बन्ध है और घड़े के साथ रूप का समवाय सम्बन्ध है।

❖ घड़े में समवाय सम्बन्ध से जैसे रूप रहता है वैसे ही रस गुण भी रहता है।

❖ आचार्य पूछते हैं जैसे संयुक्त समवाय सम्बन्ध से घड़े के रूप का ज्ञान चक्षु को होता है उसी प्रकार घड़े के रस का ज्ञान भी उसी चक्षु से होना चाहिए परन्तु ऐसा होता नहीं है इसलिए सन्निकर्ष ज्ञान प्रमाणाभास है।

❖ यहाँ तक प्रमाण-स्वरूपाभास का कथन पूर्ण हुआ।

प्रत्यक्षाभास का कथन

''अवैशद्ये प्रत्यक्षं तदाभासं, बौद्धस्याकस्माद् धूमदर्शनाद् वह्नि-विज्ञानवत्'' ॥6॥

अन्वयार्थ :-

अवैशद्ये	=	अविशद में
प्रत्यक्षं	=	प्रत्यक्ष को मानना
तदाभासं	=	प्रत्यक्षाभास है।
बौद्धस्य	=	बौद्ध के
अकस्मात्	=	अचानक
धूमदर्शनात्	=	धूम देखने से
वह्निविज्ञानवत्	=	अग्नि ज्ञान के समान।

Meaning:-

When Pratyakṣa is accepted in (things) not clear, we have its fallacy e.g. cognizance of fire by the followers of the Buddhist Philosophy from sudden vision of smoke.

सूत्रार्थ :-

अविशद ज्ञान में प्रत्यक्ष कहना प्रत्यक्षाभास है। जैसे अचानक धुँए को देखने से उत्पन्न हुआ अग्नि का ज्ञान अनुमानाभास है।

❖ अब प्रमाणाभास के भेदों का वर्णन प्रारम्भ करते हुए पहले प्रत्यक्ष प्रमाणाभास का कथन यहाँ किया गया है।

❖ दूसरे अध्याय के तीसरे सूत्र में बताया गया है कि 'विशदं प्रत्यक्षम्' अर्थात् विशद ज्ञान प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसके विपरीत यहाँ अविशद में प्रत्यक्षता कही है इसलिए यह प्रत्यक्षाभास है।

❖ जो स्पष्ट नहीं, निर्मल नहीं ऐसा ज्ञान अविशद है।

❖ जैसे बौद्धलोग अकस्मात् धुँआ देखने से अग्नि का अनुमान लगा लेते हैं, तो वह अनुमानाभास है क्योंकि धुँए का भी निश्चय हुए बिना अनुमान कैसे लगाया जा सकता है। इसी तरह जिस पदार्थ में अविशदता हो फिर भी उसे प्रत्यक्ष कहो तो यह प्रत्यक्षाभास है।

परोक्षाभास का कथन

''वैशद्येऽपि परोक्षं तदाभासं मीमांसकस्य करणज्ञानवत्'' ॥7॥

अन्वयार्थ :-

वैशद्ये	=	विशद होने पर
अपि	=	भी
परोक्षं	=	परोक्ष कहना
तदाभासं	=	परोक्षाभास है
मीमांसकस्य	=	मीमांसक के
करणज्ञानवत्	=	करणज्ञान के समान

Meaning:-

In Parokṣa (accepted) in clearness, (we have) its fallacy (Parokṣābhāsa) e.g. knowledge derived from the senses as accepted by the Mimānsakas.

सूत्रार्थ :-

विशदज्ञान को परोक्ष मानना परोक्षाभास है। जैसे मीमांसक लोग करणज्ञान को परोक्ष मानते हैं।

❖ परोक्ष ज्ञान का जो लक्षण तीसरे अध्याय के प्रथम सूत्र में बताया गया था वह यहाँ नहीं होने से परोक्षाभास है।

❖ परोक्ष ज्ञान विशद नहीं होता है फिर भी विशदज्ञान में परोक्षता कहना ही परोक्षाभास है।

❖ मीमांसक लोग इन्द्रिय जन्य ज्ञान को सर्वथा परोक्ष मानते हैं जब कि इन्द्रिय जन्य ज्ञान में भी एक देश स्पष्टता है, विशदता है फिर भी उसे परोक्ष कहना परोक्षाभास है।

❖ जैसे प्रत्यक्ष का लक्षण पाए जाने पर मीमांसकों का करणज्ञान परोक्षाभास है उसी प्रकार विशदता में भी परोक्षता कहना परोक्षाभास है।

❖ हम अपने हाथ की हथेली स्पष्ट रूप से प्रकाश में अपनी आँखों से देख रहे हैं और दूसरे को भी दिखला रहे हैं फिर भी कोई मीमांसक की तरह कहे कि नहीं, यह हथेली प्रत्यक्ष दिखाई नहीं दे रही है, यह तो परोक्ष है तो हर कोई उसकी बात पर हँसेगा क्योंकि यह प्रत्यक्ष को परोक्ष ज्ञान कह रहा है। न्याय में इसे ही परोक्षाभास कहा जाता है।

स्मरणाभास का कथन –

''अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं स्मरणाभासं, जिनदत्ते स देवदत्तो यथा'' ॥8॥

अन्वयार्थ :-

अतस्मिन्	=	पहले अनुभव नहीं किए गए पदार्थ में
तत्	=	वह
इति	=	इस प्रकार का है, ऐसे

ज्ञानं	=	ज्ञान को
स्मरणाभासं	=	स्मरणाभास कहते हैं।
यथा	=	जैसे
जिनदत्ते	=	जिनदत्त में
सः	=	वह
देवदत्तः	=	देवदत्त है, ऐसा ज्ञान।

Meaning:-

Smaraṇābhāsa (fallacy of memory) is the knowledge in one of other. e.g. When we (falsely recognise) Jinadatta as Devadatta.

सूत्रार्थ :-

जो दिमाग में धारणा रूप से है नहीं, उसमें 'वह है' इस प्रकार के ज्ञान को स्मरणाभास कहते हैं। जैसे जिनदत्त में वह देवदत्त है ऐसा याद करना।

❇ परोक्षाभास के सभी भेदों को बतलाते हुए पहले स्मृति परोक्षाभास कहते हैं।

❇ स्मृतिज्ञान का स्वरूप तृतीय अध्याय के तीसरे सूत्र में कहा है।

❇ जिस जिनदत्त को पहले देखा हो उसे पुनः देखा और हमने पहिचान लिया कि हाँ यह वह जिनदत्त है तो यह हुआ स्मृतिज्ञान। लेकिन यदि हमने देखा देवदत्त को और याद भी देवदत्त की रही और जिनदत्त को देखकर याद आया कि यह देवदत्त है तो यह स्मरणाभास है। झूठी स्मृति है।

❇ जो पदार्थ है नहीं और उसका स्मरण किया जाए तो स्मरणाभास होता है।

प्रत्यभिज्ञानाभास का कथन

"सदृशे तदेवेदं तस्मिन्नेव तेन सदृशं यमलकवदित्यादि प्रत्यभिज्ञानाभासम्" ॥9॥

अन्वयार्थ :-

सदृशे	=	सदृश वस्तु में
तत् एव इदं	=	वही यह है।
तस्मिन्	=	उसी वस्तु में
एव	=	ही
तेन	=	उसके
सदृशम्	=	सदृश है, ऐसा कहना
यमलकवत्	=	युगपत् जन्मे दो बालकों के समान
इत्यादि	=	इत्यादि प्रकार से
प्रत्यभिज्ञानाभासं	=	प्रत्यभिज्ञानाभास है।

Meaning:-

Fallacy of Pratyabhijnāna is the knowledge of 'this is that' in things bearing similarity or knowledge of similarity in the identical thing e.g. in the case of twins.

सूत्रार्थ :-

सदृश पदार्थ में 'यह वही है' ऐसा कहना, उसी पदार्थ में 'यह उसके समान है' ऐसा कहना जैसे एक साथ जन्मे हुए दो बालकों में विपरीत ज्ञान हो जाता है इत्यादि प्रकार से प्रत्यभिज्ञानाभास कहलाता है।

❇ यहाँ दो प्रकार के प्रत्यभिज्ञानाभास का वर्णन किया गया है।

1. **एकत्वप्रत्यभिज्ञानाभास** – सदृश पदार्थ में एकत्व का ज्ञान करना एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास है।

जैसे एक साथ जन्मे दो बालक के नाम जिनदत्त और देवदत्त हैं जो शक्ल से सदृश हैं। अब जिनदत्त को देखकर यह ज्ञान करना कि यह वही देवदत्त है, जो पहले देखा था तो यह एकत्व प्रत्यभिज्ञानाभास हुआ।

2. **सदृश प्रत्यभिज्ञानाभास** – उसी पदार्थ में समानपने का ज्ञान करना सदृश प्रत्यभिज्ञानाभास है।

❖ जैसे – जिनदत्त को देखकर ही ऐसा सोचने लगे कि यह जिनदत्त के जैसा लग रहा है तो यह सादृश्यप्रत्यभिज्ञानाभास हुआ।

तर्काभास का स्वरूप–

''असम्बद्धे तज्ज्ञानं तर्काभासम्'' ॥10॥

अन्वयार्थ :–

असम्बद्धे	=	अविनाभाव सम्बन्ध से रहित पदार्थ में
तत्	=	उस अविनाभाव के
ज्ञानं	=	ज्ञान को
तर्काभासम्	=	तर्काभास कहते हैं।

Meaning:-

Knowledge of concomitance in objects not related is Fallacy of Tarka.

सूत्रार्थ :–

असम्बद्ध विषय में उस सम्बद्धता का ज्ञान करना तर्काभास है।

❖ तर्क व्याप्ति से होता है और व्याप्ति अविनाभाव सम्बन्ध से बनती है। अविनाभाव सम्बन्ध के कारण ही साधन,साध्य की सम्बद्धता बनती है। ऐसी

सम्बद्धता का अभाव जिसमें पाया जाय वह तर्काभास है।

❖ जैसे किसी ने अनुमान लगाया कि जिनदत्त का बड़ा पुत्र काला है तो उसके सभी पुत्र काले होंगे, यह व्याप्ति ठीक नहीं बैठने से यह तर्काभास है।

अनुमानाभास का अधिकार प्रारम्भ

(सूत्र 11 से 50 तक)

''इदमनुमानाभासम्'' ॥11॥

अन्वयार्थ :–

इदम्	=	यह
अनुमानाभासम्	=	अनुमानाभास है।

Meaning:-

The following are fallacies of Anuman.

सूत्रार्थ :–

यह अनुमानाभास है।

❖ अनुमान का प्रयोग करने में पक्ष, हेतु और दृष्टान्त आदि अवयव प्रयुक्त होते हैं। उनका विपरीत स्वरूप होना ही पक्षाभास, हेत्वाभास, दृष्टान्ताभास आदि है। इसलिए यह अनुमानाभास को बताने वाला अधिकार सूत्र है।

❖ जैसे तत्त्वार्थसूत्र के चतुर्थ अध्याय का सूत्र 'वैमानिकाः' है, अर्थात् यहाँ से वैमानिक देवों का वर्णन होता है, उसी प्रकार यहाँ से अनुमानाभास का वर्णन प्रारम्भ होता है।

पक्षाभास का स्वरूप

''तत्रानिष्टादिः पक्षाभासः'' ॥12॥

अन्वयार्थ :-

तत्र	=	उसमें
अनिष्टादिः	=	अनिष्ट आदि
पक्षाभासः	=	पक्षाभास है।

Meaning:-

Among them Pakṣābhāsa (fallacy of the minor term or thesis) is Aniṣṭa (un-accepted) etc.

सूत्रार्थ :-

उसमें अनिष्ट आदि [बाधित,सिद्ध] को पक्षाभास कहते हैं।

❖ पक्षाभास तीन प्रकार का है - 1. अनिष्ट, 2. बाधित, 3. सिद्ध

❖ पहले जो साध्य या पक्ष का लक्षण बताया था उसमें पक्ष के तीन विशेषण थे। 1. इष्ट 2. अबाधित 3. असिद्ध।

इसी का विपरीत अनिष्ट, बाधित, सिद्ध पक्षाभास है।

❖ यहाँ साध्य, पक्ष, प्रतिज्ञा एकार्थक है।

❖ सोचने की बात है यदि हमारा पक्ष या साध्य हमें ही 'इष्ट' नहीं है तो हम उसकी सिद्धि कैसे करेंगे इसलिए अनिष्ट पक्षाभास है। ऐसा वादी तो अपने ही पक्ष का खण्डन कर देगा।

❖ इसी तरह अपना पक्ष यदि बाधित है अर्थात् प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से बाधित है तो वह भी पक्षाभास है।

❖ इसी तरह पक्ष यदि सिद्ध ही है तो उसे क्या सिद्ध करना, इस तरह सिद्ध हुआ पक्ष पक्षाभास है।

अनिष्ट पक्षाभास का उदाहरण

''अनिष्टो मीमांसकस्यानित्यः शब्दः'' ॥ 13 ॥

अन्वयार्थ :-

मीमांसकस्य	=	मीमांसक का
शब्दः	=	शब्द
अनित्यः	=	अनित्य है
अनिष्टः	=	यह अनिष्ट पक्षाभास है।

Meaning:-

Aniṣṭa (un-accepted) is (the view of) Mimāṃsakas that sound is momentry.

सूत्रार्थ :-

मीमांसक का कहना है कि शब्द अनित्य है, यह अनिष्टपक्षाभास है।

❖ मीमांसक लोग शब्द को आकाश का गुण मानते हैं तथा शब्द को नित्य मानते हैं, फिर भी अपने मंतव्य के विरुद्ध यदि किसी कारण वश, घबराहट से या सभा की भीड़ को देखकर यह कहने लगे कि शब्द अनित्य है तो उनका यह पक्ष अनिष्ट पक्षाभास है।

सिद्ध पक्षाभास का उदाहरण

''सिद्धः श्रावणः शब्दः'' ॥ 14 ॥

अन्वयार्थ :-

शब्दः	=	शब्द
श्रावणः	=	सुना जाता है
सिद्धः	=	यह सिद्ध है।

Meaning:-

It is established that sounds can be heard by the ear.

सूत्रार्थ :-

शब्द श्रवणेन्द्रिय का विषय है, यह सिद्धपक्षाभास है।

❖ शब्द श्रवण इन्द्रिय का विषय है, यह बात तो वादी, प्रतिवादी सभी को इष्ट है और यह बात प्रत्यक्ष से सिद्ध है फिर भी इसी को सिद्ध करने की प्रतिज्ञा करना सो सिद्धपक्षाभास है। क्योंकि सिद्ध उसे किया जाता है जो प्रतिवादी को असिद्ध है।

बाधित पक्षाभास के भेद –

''बाधितः प्रत्यक्षानुमानागमलोकस्ववचनैः'' ॥ 15 ॥

अन्वयार्थ :-

प्रत्यक्षा–नुमाना–गम–लोक–स्ववचनैः	= प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक, स्ववचन के द्वारा
बाधितः	=बाधित पक्षाभास होता है।

Meaning:-

Opposition (may exist) from Pratyakṣa, Anumāna, Āgama, popular acceptance and one's own words.

सूत्रार्थ :-

प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, लोक और स्ववचन से बाधित पक्षाभास होता है।

❖ इस सूत्र में बाधित पक्षाभास के भेद बताए हैं।

❖ बाधित पक्षाभास के पाँच भेद है –

1. प्रत्यक्ष बाधित – जो प्रतिज्ञा प्रत्यक्ष से ही बाधित हो वह प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास है।

2. अनुमान बाधित – जो प्रतिज्ञा अनुमान प्रमाण से बाधित हो वह अनुमान बाधित पक्षाभास है।

3. आगम बाधित – जो प्रतिज्ञा सिद्धान्त, आगम के विरुद्ध हो वह आगम बाधित पक्षाभास है।

4. लोकबाधित – जो बात लोक में मान्य न हो वह लोकबाधित पक्षाभास है।

5. स्ववचन बाधित – जिस प्रतिज्ञा में अपने ही वचनों से अपनी बात ही बाधित हो वह स्ववचन बाधित पक्षाभास है।

प्रत्यक्षबाधित पक्षाभास का उदाहरण

''तत्र प्रत्यक्षबाधितो यथा, अनुष्णोऽग्निर्द्रव्यत्वाज्जलवत्'' ॥ 16 ॥

अन्वयार्थ :-

तत्र	=	उन बाधाओं में
यथा	=	जैसे
अग्निः	=	अग्नि
अनुष्णः	=	उष्णा नहीं है
द्रव्यत्वात्	=	द्रव्य होने से
जलवत्	=	जल के समान
प्रत्यक्षबाधितः	=	यह प्रत्यक्ष बाधित है

Meaning:-

In these Subdivisions, Pratyakṣa-Vādhita (opposed to Pratyakṣa) may be exemplified by "Fire is not hot as it is a thing e.g. water"

सूत्रार्थ :-

अग्नि उष्ण नहीं है क्योंकि वह द्रव्य है जैसे कि जल, यह उनमें प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास है।

❖ यदि कोई यह सिद्ध करना चाहे कि अग्नि उष्ण नहीं है और हेतु देवे कि

अग्नि ठंडी होती है क्योंकि द्रव्य है। जैसे जल होता है। अर्थात् जैसे जल ठण्डा है क्योंकि वह द्रव्य है उसी प्रकार अग्नि भी है। यह बात प्रत्यक्ष प्रमाण से सभी जानते हैं कि अग्नि स्पर्शन इन्द्रिय से उष्ण ही अनुभव में आती है फिर भी अग्नि को अनुष्ण कहने की प्रतिज्ञा करना, वास्तव में प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास है।

अनुमान बाधित पक्षाभास

''अपरिणामी शब्दः कृतकत्त्वाद् घटवत्'' ॥ 17 ॥

अन्वयार्थ :-

शब्दः	=	शब्द
अपरिणामी	=	अपरिणामी है
कृतकत्वात्	=	कृतकत्व होने से
घटवत्	=	घड़े की तरह

Meaning:-

Sound is without modification as it is something caused e.g. a Pitcher.

सूत्रार्थ :-

शब्द अपरिणामी है क्योंकि वह कृतक है जैसे कि घट।

❖ यहाँ जो अनुमान प्रमाण दिया गया है वह वस्तुतः अनुमान बाधित प्रमाण है क्योंकि अनुमान हेतु पर टिका होता है। यदि हेतु ही बाधा को प्राप्त हो जाय तो समझो कि वह अनुमानभास है।

❖ यहाँ कहा गया है कि शब्द परिणमनशील नहीं है क्योंकि शब्द कृतक है। भला जो पदार्थ कृतक है अर्थात् किसी का बनाया हुआ है वह अपरिणामी कैसे होगा ? घड़ा कृतक तो है लेकिन अपरिणामी तो नहीं है इसलिए कृतकहेतु पक्ष को अनुमान से बाधित करता है। अतः शब्द अपरिणामी है, यह अनुमान बाधित पक्षाभास

है।

आगम बाधित पक्षाभास

''प्रेत्यासुखदो धर्मः पुरुषाश्रितत्वादधर्मवत्'' ॥ 18 ॥

अन्वयार्थ :-

धर्मः	=	धर्म
प्रेत्य–	=	परलोक में
असुखदः	=	सुख देने वाला नहीं है
पुरुषाश्रितत्वात्	=	पुरुषाश्रित होने से
अधर्मवत्	=	अधर्म के समान ।

Meaning:-

Dharma will Produce grief after death as it is subservient to beings like Adharma.

सूत्रार्थ :-

धर्म परलोक में दुःख को देनेवाला है क्योंकि वह पुरुष के आश्रित है। जैसे – अधर्म।

❖ इस सूत्र में अनुमान बनाया गया है कि – धर्म परभव में दुःख देने वाला है क्योंकि पुरुष के आश्रित है। जो–जो पुरुष के आश्रित होता है वह सब दुःख देने वाला होता है जैसे अधर्म।

❖ इस वाक्य में प्रतिज्ञा आगम विरुद्ध है। आगम भी प्रमाण है और आगम में धर्म को सुख देने वाला कहा है अतः यह पक्ष आगम बाधित पक्षाभास है कि धर्म परभव में दुःख देने वाला है।

लोकबाधित पक्षाभास

"शुचि नरशिरः कपालं प्राण्यंगत्वाच्छंखशुक्तिवत्" ॥ 19 ॥

नर–शिरः कपालम्	=	मनुष्य के शिर का कपाल
शुचि	=	पवित्र है
प्राण्यंगत्वात्	=	प्राणी का अंग होने से
शंखशुक्तिवत्	=	शंख, सीप की तरह

Meaning:-

A human skull is pure as it is a part of the body of an animal like a conch-shell or oyster.

सूत्रार्थ :-

मनुष्य के शिर का कपाल पवित्र है क्योंकि वह प्राणी का अंग है, जैसे कि शंख–सीप।

❖ जो जो प्राणी के अंग होते हैं वह पवित्र होते हैं जैसे शंख, सीप। यह अनुमान प्रयोग है और पक्ष है –'मनुष्य के शिर का कपाल पवित्र है।'

❖ यहाँ पक्ष या की गई पतिज्ञा लोक में मान्य नहीं है। लोक में ऐसी स्वीकारता नहीं है इसलिए यह पक्ष लोक बाधित पक्षाभास है।

❖ शंख, मोती, सीप भी प्राणी के शरीर के अवयव हैं फिर भी मनुष्य की खोपड़ी और इन शंख आदि में बहुत अन्तर है। देखो लोक में गाय का दूध तो पवित्र माना है और रक्त अपवित्र। अतः प्राणी के अंग होने मात्र से सभी पक्ष एक समान मान्य नहीं हो सकते हैं।

स्ववचन बाधित पक्षाभास

"माता मे बन्ध्या पुरुषसंयोगेऽप्यगर्भत्वात् प्रसिद्धबन्ध्यावत्" ॥ 20 ॥

अन्वयार्थ :-

मे	=	मेरी
माता	=	माँ
बन्ध्या	=	बाँझ है,
पुरुष संयोगे	=	पुरुष का संयोग होने पर
अपि	=	भी
अगर्भत्वात्	=	गर्भ नहीं होने से
प्रसिद्ध बन्ध्यावत्	=	प्रसिद्ध बन्ध्या के समान

Meaning:-

My mother is barren because she does not conceive in spite of connection with a male like women famous as barren.

सूत्रार्थ :-

मेरी माता बन्ध्या है क्योंकि पुरूष का संयोग होने पर भी उसके गर्भ नहीं रहता जैसे कि प्रसिद्ध बन्ध्या स्त्री ।

❖ जो पुरुष कह रहा है कि मेरी माता बाँझ है, उसकी यह बात स्पष्ट रूप से समझ आती है कि उसके अपने वचनों से अपने कथन में ही बाधा आ रही है। भला, जो पुत्र है तो वह बन्ध्या माँ से कैसे उत्पन्न होगा ? इसलिए यह स्ववचन बाधित पक्षाभास है।

पक्षाभास

1. अनिष्ट पक्षाभास
2. सिद्ध पक्षाभास
3. बाधित पक्षाभास
   1. प्रत्यक्ष बाधित
   2. अनुमान बाधित
   3. आगम बाधित
   4. लोक बाधित
   5. स्ववचन बाधित

हेत्वाभास के भेद –

***''हेत्वाभासा असिद्धविरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः''* ॥21॥**

अन्वयार्थ :-

असिद्ध–विरुद्धानैकान्तिकाकिञ्चित्कराः =असिद्ध, विरुद्ध अनैकान्तिक, अकिञ्चित्कर

हेत्वाभासः = हेत्वाभास है

Meaning:-

Hetvābhāsas are Asiddha, Viruddha, Anaikāntika and Akiñchitkara.

सूत्रार्थ :-

असिद्ध, विरुद्ध अनैकान्तिक और अकिञ्चित्कर ये चार हेत्वाभास के भेद हैं।

❖ अध्याय–3 के सूत्र 11 में हेतु का लक्षण बताया गया है कि हेतु वह है जिसका साध्य के साथ अविनाभाव सम्बन्ध निश्चित है। यदि हेतु का यह लक्षण नहीं पाया जाता है तो सभी हेतु हेत्वाभास कहलाते हैं।

❖ ऐसे हेत्वाभास चार प्रकार के हैं।

1. असिद्ध हेत्वाभास
2. विरुद्ध हेत्वाभास
3. अनैकान्तिक हेत्वाभास
4. अकिञ्चित्कर हेत्वाभास

असिद्ध हेत्वाभास का स्वरूप एवं भेद

***''असत्सत्तानिश्चयोऽसिद्धः''* ॥22॥**

अन्वयार्थ :-

असत्सत्ता– = जिस हेतु की सत्ता का अभाव हो और

अनिश्चयः = निश्चय न हो

असिद्धः = वह असिद्ध है

Meaning:-

Asiddha is that whose existence is wanting in Pakṣa and which is not definitely established.

सूत्रार्थ :-

जिस हेतु की सत्ता का अभाव हो अथवा निश्चय न हो; उसे असिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

❖ असिद्ध हेत्वाभास दो प्रकार का है।

1. असत्सत्ता हेत्वाभास – जिस हेतु की सत्ता ही न हो अथवा जिस हेतु का स्वरूप से ही अभाव हो वह असत्सत्ता हेत्वाभास है। इसी को अविद्यमान सत्ताक हेत्वाभास या स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास कहते हैं।

2. अनिश्चय हेत्वाभास – जिस हेतु के रहने का निश्चय न हो, सन्देह हो उसे अनिश्चय हेत्वाभास कहते हैं। इसी को अविद्यमान निश्चय हेत्वाभास या सन्दिग्धासिद्ध

हेत्वाभास कहते हैं।

असत्सत्ता हेत्वाभास का स्वरूप

''अविद्यमानसत्ताकः परिणामी शब्दश्चाक्षुषत्वात्'' ॥23॥

अन्वयार्थ :-

परिणामी शब्दः	=	शब्द परिणामी है
चाक्षुषत्वात्	=	चाक्षुष होने से
अविद्यमानसत्ताकः	=	यह अविद्यमान सत्ता वाला हेतु है।

Meaning:-

'Sound is Perishable because it can be seen by the eyes'. This is (an example of) non-existence of its self.

सूत्रार्थ :-

शब्द परिणामी है क्योंकि वह चाक्षुष है अर्थात् चक्षु से जाना जाता है यह अविद्यमान सत्तावाले स्वरूपासिद्ध हेत्वाभास का उदाहरण है।

❖ यहाँ अविद्यमान सत्ताक हेत्वाभास का कथन दृष्टान्त देकर किया है।

❖ शब्द परिणामी है क्योंकि चक्षु इन्द्रिय से जाना जाता है। यहाँ जो चक्षुइन्द्रिय से जानना, यह हेतु दिया है, यह हेतु स्वरूप से ही असिद्ध है अथवा यूँ कहें कि यह हेतु ही नहीं है क्योंकि सभी जानते हैं कि शब्द कभी भी चक्षु इन्द्रिय से नहीं जाना जाता है, शब्द तो कर्ण इन्द्रिय का विषय है। इसलिए यह चाक्षुष हेतु की सत्ता अविद्यमान होने से अविद्यमान सत्ताक असिद्ध हेत्वाभास है।

पूर्वोक्त हेतु के हेत्वाभास का कारण

''स्वरूपेणासत्त्वात्'' ॥24॥

अन्वयार्थ :-

स्वरूपेण	=	स्वरूप से
असत्त्वात्	=	असत् होने से

Meaning:-

Because it does not exist at all in its self.

सूत्रार्थ :-

शब्द का चाक्षुष होना स्वरूप से ही असिद्ध है।

❖ पूर्व सूत्र में उदाहरण में जो 'चाक्षुष' हेतु दिया गया है वह स्वरूप से ही, स्वतः ही असत् है।

❖ इस तरह असिद्ध हेत्वाभास के प्रथम भेद को उदाहरण और कारण सहित इन दो सूत्रों में कह दिया है।

अनिश्चय हेत्वाभास का उदाहरण

''अविद्यमाननिश्चयो मुग्धबुद्धिं प्रत्यग्निरत्र धूमात्'' ॥25॥

अन्वयार्थ :-

मुग्धबुद्धिंप्रति	=	मुग्ध बुद्धि पुरुष के लिए कहना कि,
अत्र	=	यहाँ
अग्निः	=	अग्नि है
धूमात्	=	धूम होने से
अविद्यमान निश्चयः	=	यह अविद्यमान निश्चय हेत्वाभास है

Meaning:-

When there is uncertainty, if one says to a man of inferior intellcet 'Here is fire because there is smoke'.

सूत्रार्थ :-

मुग्ध बुद्धि पुरुष के प्रति कहना कि यहाँ अग्नि है धूम होने से। यह अविद्यमान निश्चय वाले अनिश्चय हेत्वाभास का उदाहरण है।

❈ इस सूत्र में यह बताया गया है कि असिद्ध हेत्वाभास का जो दूसरा भेद अनिश्चय हेत्वाभास है, वह कैसा होता है ?

❈ जो मुग्ध बुद्धि अर्थात् कम बुद्धि वाला या भोलाभाला मनुष्य है उसके लिए यह कहना कि यहाँ अग्नि है, धूम होने से तो यह अनुमान उसको अविद्यमान निश्चय नामक हेत्वाभास है।

❈ यह हेतु हेत्वाभास क्यों है, इसका कारण अगले सूत्र में कहते हैं।

पूर्वोक्तहेत्वाभास का कारण

"तस्य वाष्पादिभावेन भूतसंघाते सन्देहात्" ॥26॥

अन्वयार्थ :-

तस्य	=	उसके
भूतसंघाते	=	भूतसंघात में
वाष्पादि-भावेन	=	वाष्प (भाप) आदि भाव से
संदेहात्	=	संदेह होने से

Meaning:-

He has doubt owing to the existence of vapour etc. in the collection of many elements (earth, water etc. and he can not definitely asertain whether if it is smoke or vapour).

सूत्रार्थ :-

क्योंकि उसे भूतसंघात में भाप आदि के रूप में संदेह हो सकता है।

❈ यहाँ भूतसंघात से तात्पर्य उस पात्र से है जिसमें से भाप निकल रही है और जो अभी-अभी चूल्हे से उतारा गया है।

❈ पिछले सूत्र में 'धुँआ' हेतु दिया है। उसका निश्चय अविद्यमान है।

❈ हेतु का अनिश्चय इसलिए है कि - जो मुग्ध बुद्धि, मूर्ख व्यक्ति है वह धुँए और भाप में अन्तर नहीं समझ पाता है। वह कभी धुँए को भाप और भाप को धुँआ समझ लेता है इसलिए उसके लिए यह हेतु सन्दिग्ध असिद्ध है।

❈ मुग्ध बुद्धि पुरुष बटलोई से निकलती हुई भाप को धुँआ समझकर उसमें अग्नि होने का अनुमान लगा लेता है।

❈इतना विशेष ध्यान रखें कि यह हेतु मात्र मुग्ध बुद्धि मनुष्य के लिए हेत्वाभास है।

पूर्वोक्त हेत्वाभास का अन्य मत का उदाहरण

"सांख्यम्प्रति परिणामी शब्दः कृतकत्वात्" ॥27॥

अन्वयार्थ :-

सांख्यम्प्रति	=	सांख्यों के लिए
शब्दः	=	शब्द
परिणामी	=	परिणामी है
कृतकत्वात्	=	कृतक होने से

Meaning:-

To (the follower of) the sānkhya (philosophy)-sound is Perishable, because it is caused (by some one).

सूत्रार्थ :-

सांख्य के प्रति कहना है कि शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक है। यह हेतु सांख्य के लिए असिद्ध है।

❇ शब्द परिणामी है, कृतक होने से, यद्यपि यह अनुमान सही है कि – जो कृतक होता है वह परिणमन शील(Changable) होता है। सभी पदार्थों में परिणमन होते हुए भी कृतक पदार्थों का परिणमन तो स्पष्ट ही जानने में आता है, फिर भी यह हेतु सांख्य मत को मानने वालों को अविद्यमान निश्चय नाम का हेत्वाभास है।

❇ यह हेत्वाभास क्यों है इसका कारण आगे सूत्रकार कहते हैं।

❇ इतना विशेष ध्यान रखें कि यह हेतु मात्र सांख्यों के लिए हेत्वाभास है।

पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण

''तेनाज्ञातत्वात्'' ॥28॥

अन्वयार्थ :-

तेन	=	उसने
अज्ञातत्वात्	=	हेतु जाना ही नहीं है

Meaning:-

Because he does not know (or accept) it.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि उसने कृतकपना जाना ही नहीं है।

❇ क्योंकि उन सांख्यों ने कृतकपना जाना ही नहीं है।

❇ सांख्य लोग किसी भी कार्य को कृतक हेतु से मानते ही नहीं है। ये लोग मानते हैं कि सब कुछ सब जगह सभी पदार्थों में रहता है। मात्र किन्हीं कारणों से उसका आविर्भाव कर दिया जाता है। उससे पहले उसका तिरोभाव (छिपा होना) था। इसलिए उनको कृतक हेतु अज्ञात है।

❇ जैसे कुम्भकार ने घड़ा बनाया तो सांख्य लोग यह नहीं मानते कि कुम्भकार ने बनाया। वह कहते हैं कि वह घड़ा तो मिट्टी में पहले से ही था उसका

मात्र आविर्भाव (प्रकट होना) हुआ है।

❇ इस तरह जब सांख्य लोग कृतकत्व हेतु ही नहीं मान रहे हैं तो पूर्वोक्त उदाहरण में जो शब्द को परिणामी सिद्ध करने के लिए कृतकत्व हेतु दिया है वह उन सांख्यों के लिए अनिश्चय हेत्वाभास या सन्दिग्धासिद्ध हेत्वाभास है।

विरुद्ध हेत्वाभास का स्वरूप एवं उदाहरण

''विपरीतनिश्चिताविनाभावो विरुद्धोऽपरिणामी शब्दः कृतकत्वात्'' ॥29॥

अन्वयार्थ :-

विपरीत –निश्चित–अविनाभावः	=	विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित है
विरुद्धः	=	वह विरुद्ध है।
शब्दः	=	जैसे शब्द
अपरिणामी	=	अपरिणामी है
कृतकत्वात्	=	कृतक होने से।

Meaning:-

Viruddha (Hetvābhāsa) is concomitance with the opposite of the major term e.g. sound is not perishable because it is caused.

सूत्रार्थ :-

साध्य से विपरीत पदार्थ के साथ जिसका अविनाभाव निश्चित हो उसे विरुद्धहेत्वाभास कहते है। जैसे – शब्द परिणामी है क्योंकि वह कृतक है।

❇ जहाँ पर व्याप्ति या अविनाभाव सम्बन्ध साध्य के विरुद्ध हो तो वहाँ विरुद्ध हेत्वाभास होता है।

❈ जैसे इस दृष्टान्त में हेतु की व्याप्ति साध्य के साथ नहीं है किन्तु विरुद्ध साध्य से है। शब्द अपरिणामी (नित्य) है क्योंकि किसी के द्वारा किया हुआ है। कृतक हेतु की व्याप्ति तो परिणामी पदार्थ के साथ है और यहाँ अपरिणामी के साथ बनाई है इसलिए यह विरुद्ध हेत्वाभास है।

अनैकान्तिक हेत्वाभास का स्वरूप

''विपक्षेऽप्यविरुद्धवृत्तिरनैकान्तिकः'' ॥30॥

अन्वयार्थ :-

विपक्षे	=	विपक्ष में
अपि	=	भी
अविरुद्धवृत्तिः	=	अविरुद्ध रूप से होना
अनैकान्तिकः	=	अनैकान्तिक है।

Meaning:-

In Anaikāntika (Hetvābhāsa) (Hetu) resides also in Vipakṣa. (In addition to being in Pakṣa and Sapakṣa)

सूत्रार्थ :-

जिसका विपक्ष में भी रहना अविरुद्ध है अर्थात् जो हेतु पक्ष-सपक्ष के समान विपक्ष में भी बिना किसी विरोध के रहना है उसे अनैकान्तिक हेत्वाभास कहते है।

❈ सूत्र में आए 'अपि' शब्द से पक्ष, सपक्ष का ग्रहण करना है।

❈ जो हेतु पक्ष, सपक्ष और विपक्ष तीनों में पाया जाए वह अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

❈ इसी को व्यभिचारी हेत्वाभास भी कहते हैं।

❈ सन्दिग्ध साध्य वाले धर्मी को पक्ष कहते हैं। जहाँ साध्य है या नहीं यह सिद्ध करना हो वह पक्ष है। जैसे पर्वत

❈ साध्य के समान धर्म वाले धर्मी को सपक्ष कहते हैं। जैसे - रसोईघर

❈ साध्य से विरुद्ध धर्म वाले धर्मी को विपक्ष कहते हैं। जैसे - तालाब

❈ जैसे कोई व्यक्ति कांग्रेस का हो तो यह पक्ष हुआ। साथ में वह व्यक्ति कांग्रेस समर्थक किसी अन्य पार्टी के साथ भी मिला हो तो सपक्ष में जाना हुआ। और वही व्यक्ति यदि विरोधी पार्टी भाजपा में भी मिला है तो वह विपक्ष में भी हुआ। ऐसा व्यक्ति ही व्यभिचारी कहलाता है।

अनैकान्तिक हेत्वाभास का प्रथम भेद एवं उसका उदाहरण

''निश्चितवृत्तिरनित्यः शब्दः प्रमेयत्वाद् घटवत्'' ॥31॥

अन्वयार्थ :-

शब्दः	=	शब्द
अनित्यः	=	अनित्य है
प्रमेयत्वात्	=	प्रमेय होने से
घटवत्	=	घट के समान
निश्चित वृत्तिः	=	यह निश्चित वृत्ति है।

Meaning:-

Where it is certain that (Hetu) is in (Vipakṣa) (we have the fallacy of Nīschita Vipakṣa Vritti. e.g. 'Sound is Perishable because it is Knowledge Hetvābhāsa like a pitcher'.

सूत्रार्थ :-

शब्द अनित्य है, क्योंकि वह प्रमेय है। जैसे - घट। यह निश्चित विपक्षवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

❈ प्रमाण का विषय प्रमेय होता है जैसे ज्ञान का विषय ज्ञेय होता है।

❖ प्रमेय, ज्ञेय समानार्थक हैं।

❖ जिस हेतु की वृत्ति पक्ष, समक्ष के साथ विपक्ष में निश्चित है वह निश्चित वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है।

❖ यहाँ हेतु है – प्रमेयत्वात्– प्रमेय होना

❖ अनुमान प्रयोग – शब्द अनित्य है, प्रमेय होने से जैसे घट। अर्थात् जो-जो प्रमेय होते हैं वे अनित्य होते हैं जैसे कि घड़ा।

❖ इस अनुमान में प्रयुक्त हेतु हेत्वाभास क्यों है ? उसका कारण अगले सूत्र में कहते हैं।

पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण

''आकाशे नित्येऽप्यस्य निश्चयात्'' ॥32॥

अन्वयार्थ :-

नित्ये	=	नित्य
आकाशे	=	आकाश में
अपि	=	भी
अस्य	=	इसका
निश्चयात्	=	निश्चय होने से।

Meaning:-

Because it (The quality of Knowability) is as certained in things like Ākāsa which are imperishable.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि नित्य आकाश में भी इस प्रमेयत्व हेतु के रहने का निश्चय हैं।

❖ पूर्व सूत्र में कहे दृष्टान्त में हेतु – प्रमेयत्व, साध्य-अनित्य है।

❖ प्रमेयत्व हेतु का पक्ष शब्द है, इसलिए इस हेतु की वृत्ति पक्ष में सिद्ध है।

❖ प्रमेयत्व हेतु का सपक्ष घट है, इसलिए इस हेतु की वृत्ति सपक्ष में सिद्ध है।

❖ प्रमेयत्व हेतु का विपक्ष आकाश है, इसलिए इस हेतु की वृत्ति विपक्ष में सिद्ध है।

❖ पहले बताया है कि साध्य से विपरीत धर्म वाला पक्ष विपक्ष होता है। यहाँ साध्य था – अनित्य। इसका विपरीत हुआ – नित्य। नित्य साध्य को धारण करने वाला पक्ष आकाश है, इसलिए आकाश विपक्षधर्मी हुआ।

❖ चूँकि इस प्रमेयत्व हेतु की वृत्ति विपक्ष में भी निश्चित है इसलिए यह निश्चित वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास सिद्ध हुआ।

❖ जैसे शब्द ज्ञान का विषय है, घट ज्ञान का विषय है, उसी तरह आकाश भी ज्ञान का विषय है, इसलिए यह कैसे कहा जा सकता है कि प्रमेय (ज्ञान का विषय) होने से शब्द अनित्य है। अरे भाई! जब ज्ञान का विषय आकाश भी है तो फिर हेतु अबाधित नहीं रहा इसीलिए हेत्वाभास है।

शंकित वृत्ति हेत्वाभास का उदाहरण

''शङ्कितवृत्तिस्तु नास्ति सर्वज्ञो वक्तृत्वात्'' ॥33॥

सर्वज्ञः	=	सर्वज्ञ
नास्ति	=	नहीं है
वक्तृत्वात्	=	वक्ता होने से
शंकितवृत्तिः	=	यह शंकित विपक्षवृत्ति हैं।

Meaning:-

Where the matter is involved in doubt (we have the fallacy of Sankita Vipakṣa Vritti) e.g. an omniscient

being does not exist for he can speak.

सूत्रार्थ :-

सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वह वक्ता है अर्थात् बोलने वाला है। यह शंकित विपक्ष वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास का उदाहरण है।

❖ अनैकान्तिक हेत्वाभास का दूसरा भेद शंकित वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास है। उसी का यहाँ वर्णन है।

❖ जिस हेतु का विपक्ष में सन्देह रहे अर्थात् यह हेतु विपक्ष में रह सकता है या नहीं रह सकता इस प्रकार की शंका होने से शंकित वृत्ति नाम का अनैकान्तिक हेत्वाभास होता है।

❖ इस उदाहरण में हेतु – वक्तृत्वात्–वक्ता होना है।

❖ अनुमान प्रयोग – सर्वज्ञ नहीं है, क्योंकि वे वक्ता हैं। अर्थात् जो–जो वक्ता होता है वह सर्वज्ञ नहीं होता है। ऐसा अनुमान लगाकर वक्तृत्व हेतु से सर्वज्ञ का निषेध करना शंकितवृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

❖ यह हेत्वाभास क्यों है ? इसका कारण आगे के सूत्र में कहते हैं।

पूर्वोक्त हेत्वाभास का कारण

"सर्वज्ञत्वेन वक्तृत्वाविरोधात्" ॥34॥

अन्वयार्थ :-

सर्वज्ञत्वेन	=	सर्वज्ञ के साथ
वक्तृत्व–	=	वक्तापने का
अविरोधात्	=	विरोध नहीं है

Meaning:-

Because there is no opposition of being able to speak with omniscience.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि सर्वज्ञत्व के साथ वक्तापने का कोई विरोध नहीं है।

❖ वक्तृत्व हेतु है। साध्य – सर्वज्ञ नहीं है।

❖ साध्य का विपरीत – सर्वज्ञ का सद्भाव हुआ। यही विपक्ष है।

❖ चूँकि यह हेतु शंकित वृत्ति के साथ विपक्ष में भी रहता है इसलिए यह शंकित वृत्ति अनैकान्तिक हेत्वाभास है।

❖ क्या सर्वज्ञ भी वक्ता हो सकते हैं ? जो वक्ता भी हो, सर्वज्ञ भी हो ये दोनों बातें क्या सम्भव हैं ? इस प्रकार की वृत्ति यहाँ शंकित वृत्ति है।

❖ चूँकि सर्वज्ञ के साथ वक्तृत्वपने का विरोध नहीं है, अर्थात् सर्वज्ञ भी वक्ता होते हैं इसलिए पूर्वोक्त वक्तृत्व हेतु हेत्वाभास है।

अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का स्वरूप

"सिद्धे प्रत्यक्षादिबाधिते च साध्ये हेतुरकिञ्चित्करः" ॥35॥

अन्वयार्थ :-

सिद्धे	=	सिद्ध होने पर
च	=	और
प्रत्यक्षादिबाधिते	=	प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर
साध्ये	=	साध्य में
हेतुः	=	हेतु
अकिञ्चित्करः	=	अकिञ्चित्कर होता है

Meaning:-

Akiñchitkara (Hetvābhāsa) consists of (use of) Hetu (Middle term) in connection with a Sādhya (major term) which had already been established and which

is opposed by Pratyakṣa etc.

सूत्रार्थ :-

साध्य के सिद्ध होने पर और प्रत्यक्षादि प्रमाणों से बाधित होने पर प्रयुक्त हेतु अकिञ्चित्त्कर हेत्वाभास कहलाता है।

❖ न किञ्चित् करोति इति अकिञ्चित्करः अर्थात् जो कुछ नहीं करता है वह अकिञ्चित्कर है।

❖ जो हेतु कुछ भी साध्य की सिद्धि न करे वह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास कहलाता है।

❖ यह दो प्रकार का है। 1. जब साध्य स्वयं सिद्ध है, फिर भी उसकी सिद्धि के लिए हेतु देना सिद्ध साध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

2. जब साध्य प्रत्यक्ष आदि प्रमाण से बाधित हो, फिर भी उसकी सिद्धि के लिए हेतु देना बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

सिद्ध साध्य अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण

''सिद्धः श्रावणः शब्दः शब्दत्वात्'' ॥36॥

अन्वयार्थ :-

शब्दः	=	शब्द
श्रावणः	=	कर्णइन्द्रिय का विषय है
शब्दत्वात्	=	शब्द होने से
सिद्धः	=	यह सिद्ध साध्य है

Meaning:-

Capability of being heard by the ear is established regarding sound, as it is sound.

सूत्रार्थ :-

शब्द श्रवण [कर्णेन्द्रिय] का विषय होता है इसलिए सिद्ध साध्य है।

❖ शब्द श्रवण [कर्ण] इन्द्रिय का विषय है, यह सबको सिद्ध होने से जानने में आता है फिर भी उस शब्द का श्रावण [कर्ण इन्द्रिय का विषय] सिद्ध करने के लिए 'शब्दत्व' हेतु देना सिद्ध साध्य नाम का अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

किञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण

''किञ्चिदकरणात्'' ॥37॥

अन्वयार्थ :-

किञ्चित्	=	कुछ भी
अकरणात्	=	नहीं कर सकता है

Meaning:-

Because (Hetu) does not do anything (in such a case).

सूत्रार्थ :-

कुछ भी नहीं करने से शब्दत्व हेतु अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

❖ जब साध्य स्वयं सिद्ध है तो कुछ भी हेतु देकर अनुमान लगाना हेतु की अकिञ्चित्कर वृत्ति को सिद्ध करता है।

बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का उदाहरण

''यथाऽनुष्णोग्निर्द्रव्यत्वादित्यादौ किञ्चित्कर्तुमशक्यत्वात्'' ॥38॥

अन्वयार्थ :-

यथा	=	जैसे
अग्निः	=	आग
अनुष्णः	=	गर्म नहीं है

द्रव्यत्वात्	=	द्रव्य होने से
इत्यादौ	=	इत्यादिक में
किञ्चित्	=	कुछ भी
कर्त्तुम्	=	करने के लिए
अशक्यत्वात्	=	शक्य न होने से

Meaning:-

As for example, fire is cold as this is a thing. In such cases (Hetu) can not do enything.

सूत्रार्थ :-

जैसे अग्नि उष्ण नहीं है क्योंकि वह द्रव्य है इत्यादि अनुमान में प्रयुक्त यह हेतु साध्य की कुछ भी सिद्धि करने के लिए शक्य नहीं है।

❖ अग्नि गर्म नहीं है, द्रव्य होने से। यहाँ द्रव्यत्व हेतु प्रत्यक्ष बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है। क्योंकि यह द्रव्यत्व हेतु 'अग्नि गर्म नहीं है', इस साध्य की सिद्धि में कुछ भी करने में समर्थ नहीं है।

❖ अग्नि गर्म नहीं है – यह पक्ष [साध्य] प्रत्यक्ष बाधित है।

❖ सभी जानते हैं कि अग्नि गर्म होती है, ऐसे प्रत्यक्ष बाधित साध्य की सिद्धि में हेतु कुछ नहीं कर सकता है। इसलिए यह प्रत्यक्ष बाधित अकिञ्चित्कर हेत्वाभास है।

निपुण पुरुषों को मात्र पक्ष दूषण की आवश्यकता है।

''लक्षण एवासौ दोषो व्युत्पन्नप्रयोगस्य पक्षदोषेणैव दुष्टत्वात्'' ॥39॥

अन्वयार्थ :-

लक्षणे	=	लक्षण में
एव	=	ही

असौ	=	यह
दोषः	=	दोष है।
व्युत्पन्नप्रयोगस्य	=	व्युत्पन्न का प्रयोग तो
पक्षदोषेण	=	पक्ष के दोष से
एव	=	ही
दुष्टत्वात्	=	दूषित होने से सिद्ध हो जाता है।

Meaning:-

This fault arises only in definition. For in use by those conversant with reasoning, the fault is proved by fault of Pakṣa. (minor term)

सूत्रार्थ :-

यह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास रूप दोष हेतु के लक्षण व्युत्पादन काल में ही है वाद काल में नहीं। क्योंकि व्युत्पन्न पुरुष का प्रयोग तो पक्ष के दोष से ही दूषित हो जाता है।

❖ इस सूत्र का प्रयोजन क्या है ? समझें – यहाँ कोई प्रश्न करता है कि आपने जो यह अकिञ्चित्कर हेत्वाभास बताया है, उसकी क्या जरूरत थी। जब पहले आपने प्रत्यक्ष बाधित, अनुमान बाधित आदि पक्षाभास कहे थे तो उसी से अनुमान गलत है, यह सिद्ध हो जाता है। पूर्व सूत्र में आपने कहा – 'अग्नि उष्ण नहीं है।' यह प्रत्यक्ष बाधित पक्षाभास में अन्तर्भावित हो जाता है फिर अकिञ्चित्कर हेत्वाभास में पुनः दूषण देना अप्रयोजनीय है ? इसी प्रश्न का समाधान इस सूत्र में है।

❖ आचार्य कहते हैं कि अकिञ्चित्कर हेत्वाभास का प्रयोग लक्षण शास्त्रों में ही दोष बताने के लिए किया जाता है। अर्थात् हेत्वाभास का स्वरूप बताते हुए सभी प्रकार के भेद बताना आवश्यक है इसलिए शास्त्र में इसका प्रयोग होता है।

किन्तु वाद - प्रतिवाद के समय व्युत्पन्न (निपुण) पुरुष तो पक्ष दोष से ही इस साध्य में दूषण दे देते हैं।

इस प्रकार हेत्वाभास का प्रकरण समाप्त हुआ।

दृष्टान्ताभास का स्वरूप

''दृष्टान्ताभासा अन्वयेऽसिद्धसाध्यसाधनोभयाः'' ॥40॥

अन्वयार्थ :-

दृष्टान्ताभासाः	=	दृष्टान्ताभास के
अन्वये	=	अन्वय में
असिद्ध-साध्य-साधन-उभयाः	=	असिद्ध साधन, असिद्ध साध्य, असिद्ध उभय भेद है।

Meaning:-

Fallacies of Dristanta (illustration) in Anvaya consists of non-establishment of Sadhya, Sadhana or both of them.

सूत्रार्थ :-

दृष्टान्ताभास के अन्वय भेद में असिद्ध साध्य, असिद्ध साधन और असिद्ध उभय भेद होते है।

❖ जैसे अन्वय और व्यतिरेक दृष्टान्त का अध्याय 3 में सूत्र 44,45 में वर्णन किया है उन्हीं लक्षणों के विपरीत यहाँ दृष्टान्ताभास को कहा है।

❖ अन्वय दृष्टान्ताभास के तीन भेद है।

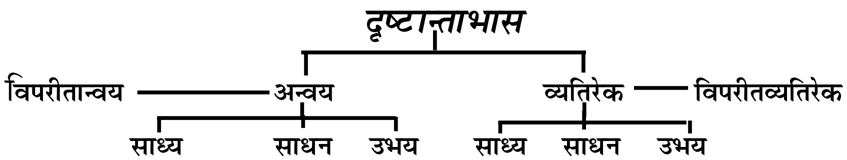

1. असिद्ध साध्य दृष्टान्ताभास - जिस दृष्टान्त में साध्य असिद्ध हो वह असिद्ध साध्य दृष्टान्ताभास है।

2. असिद्ध साधन दृष्टान्ताभास - जिस दृष्टान्त में साधन असिद्ध हो वह असिद्ध साधन दृष्टान्ताभास है।

3. असिद्ध उभय दृष्टान्ताभास - जिस दृष्टान्त में साध्य और साधन दोनों ही असिद्ध हो वह असिद्ध उभय दृष्टान्ताभास है।

अन्वय दृष्टान्ताभास के उदाहरण

''अपौरुषेयः शब्दोऽमूर्त्तत्वादिन्द्रियसुख-परमाणु-घटवत्'' ॥41॥

अन्वयार्थ :-

शब्दः	=	शब्द
अपौरुषेयः	=	अपौरुषेय है
अमूर्तत्वात्	=	अमूर्त होने से
इन्द्रियसुख-परमाणु-घटवत्	=	इन्द्रिय सुख, परमाणु और घड़े के समान

Meaning:-

Sound is unproduced by man because it has no form like sensual pleasure, atom or Pitcher.

सूत्रार्थ :-

शब्द अपौरुषेय है, क्योंकि वह अमूर्त्त है। जैसे - इन्द्रिय सुख, परमाणु और घट।

❖ इस सूत्र में अनुमान के साथ तीन अन्वय दृष्टान्ताभासों को बताया गया है।

❖ अनुमान प्रयोग - शब्द अपौरुषेय होता है, अमूर्त होने से।

❖ यहाँ तीन दृष्टान्त दिये गये हैं ।1. इन्द्रिय सुख 2. परमाणु 3. घड़ा

❖ इन्द्रिय सुख का दृष्टान्त असिद्ध साध्य दृष्टान्ताभास है। यदि इस दृष्टान्त को अनुमान प्रयोग बनाएँ तो - इन्द्रिय सुख अपौरुषेय होता है, अमूर्त होने से। यहाँ इन्द्रिय सुख को अपौरुषेय कहने से साध्य सिद्ध नहीं होता है क्योंकि इन्द्रिय सुख पौरुषेय है, हेतु भले ही ठीक बैठ जाय क्योंकि इन्द्रिय सुख अमूर्त है। अतः यह असिद्ध साध्य अन्वय दृष्टान्ताभास हुआ।

❖ परमाणु का दृष्टान्त असिद्ध साधन दृष्टान्ताभास है। अनुमान प्रयोग में - परमाणु अपौरुषेय होता है, अमूर्त्त होने से। यहाँ साध्य ठीक बैठता है कि परमाणु अपौरुषेय है किन्तु अमूर्त्तत्व साधन नहीं बैठता क्योंकि परमाणु मूर्त्त होता है इसलिए यह असिद्ध साधन अन्वय दृष्टान्ताभास हुआ।

❖ घड़े का दृष्टान्त असिद्ध-उभय-दृष्टान्ताभास है। अनुमान प्रयोग में घड़ा अपौरूषेय होता है, अमूर्त्त होने से। यहाँ साध्य और साधन दोनों ही असिद्ध है क्योंकि घड़ा न ही अपौरूषेय होता है और न अमूर्त्त। इसलिए यह असिद्ध साध्य साधन (उभय)-दृष्टान्ताभास हुआ।

विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास

''विपरीतान्वयश्च यदपौरुषेयं तदमूर्त्तम्'' ॥42॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
यत्	=	जो
अपौरुषेयं	=	अपौरुषेय है
तत्	=	वह
अमूर्तम्	=	अमूर्त है
विपरीतान्वयः	=	यह विपरीत अन्वय द्रष्टान्त है।

Meaning:-

Viparitānvayo also - "That which is unproduced by man has no from".

सूत्रार्थ :-

पूर्वोक्त अनुमान में, 'जो अपौरुषेय होता है वह अमूर्त होता है' इस प्रकार की विपरीत अन्वय व्याप्ति को दिखलाना विपरीतान्वय नाम का दृष्टान्ताभास है।

❖ यह विपरीत अन्वय नाम का दृष्टान्ताभास है क्योंकि यहाँ पर अन्वयव्याप्ति विपरीत दिखाई गई है। जहाँ साधन दिखाकर साध्य दिखाया जाय तो सही अन्वय व्याप्ति होती है जैसे इस पर्वत में अग्नि है धूम होने से। यहाँ धूम से अग्नि की व्याप्ति बनाई है। अर्थात् जहाँ-जहाँ धूम है वहाँ अग्नि है। इसके विपरीत यदि हम यूँ कह बैठे कि जहाँ - जहाँ अग्नि है वहाँ -धुँआ है जैसे पर्वत तो यह विपरीत-अन्वय व्याप्ति हो जाएगी और पर्वत का दृष्टान्त विपरीत अन्वय नाम का दृष्टान्ताभास होगा।

❖ इस सूत्र में जो व्याप्ति बनाई है वह भी विपरीत व्याप्ति है। जैसे जो - जो अपौरुषेय होता है वह अमूर्त होता है, यह व्याप्ति ठीक नहीं बैठती हैं, यही बात आगे के सूत्र में कही गई है।

❖ सही अन्वय व्याप्ति तो यह होती है कि - जो-जो अमूर्त होता है वह अपौरुषेय होता है। जैसे आत्मा, धर्म, द्रव्य, अधर्म द्रव्य आदि।

❖ चूँकि यह व्याप्ति सही है इसलिए सूत्र में कही व्याप्ति विपरीत हैं, यह सिद्ध होता है।

पूर्वोक्त दृष्टान्ताभास का कारण

"विद्युदादिनाऽतिप्रसङ्गात्" ॥43॥

अन्वयार्थ :-

विद्युदादिना	=	बिजली आदि से
अतिप्रसङ्गात्	=	अति प्रसंग होने से

Meaning:-

Because this will be applied in lightening etc.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि उपर्युक्त दृष्टान्त में विद्युत आदि से अतिप्रसङ्ग दोष आता है।

❇ जो-जो अपौरुषेय होता है, वह अमूर्त होता है, यह व्याप्ति मानने पर बिजली, जंगल, फूल-फल आदि से अति प्रसंग दोष आता है क्योंकि प्रकृति की ये सभी चीजे अपौरुषेय तो हैं पर अर्मूत नहीं हैं।

❇ जिसमें रस, गन्ध, वर्ण, स्पर्श पाया जाए वह मूर्त है।

व्यतिरेक दृष्टान्ताभास के उदाहरण

"व्यतिरेकेऽसिद्धतद्व्यतिरेकाः परमाण्विन्द्रियसुखाऽऽकाशवत्" ॥44॥

अन्वयार्थ :-

व्यतिरेके	=	व्यतिरेक में
असिद्ध-तद्-व्यतिरेकाः	=	असिद्ध आदि उसी प्रकार के भेद हैं।
परमाणु-इन्द्रियसुख-आकाशवत्	=	परमाणु, इन्द्रियसुख, आकाश की तरह

Meaning:-

In Vyatireka, siddha and the Vyatirekas of the same, like atom, sensual Pleasure and Ākāsa.

सूत्रार्थ :-

व्यतिरेक दृष्टान्ताभास में भी उसी प्रकार तीन भेद हैं। असिद्ध-साध्य-व्यतिरेक, असिद्धसाधन व्यतिरेक, असिद्ध साध्य साधन व्यतिरेक। इनके उदाहरण क्रम से परमाणु, इन्द्रिय सुख और आकाश हैं।

❇ व्यतिरेक दृष्टान्ताभास के भी अन्वय दृष्टान्ताभास की तरह तीन भेद हैं।

1. असिद्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभास।
2. असिद्ध साधन व्यतिरेक दृष्टान्ताभास।
3. असिद्ध साध्य-साधन (उभय) व्यतिरेक दृष्टान्ताभास।

❇ यहाँ अनुमान तो पूर्वसूत्र का ही लेना - शब्द अपौरुषेय है, क्योंकि वह अमूर्त है। इसी को व्यतिरेक व्याप्ति में बनाएँ। चूँकि साध्य के अभाव में साधन का अभाव दिखाने से व्यतिरेक व्याप्ति होती है, इसलिए व्यतिरेक व्याप्ति होगी कि - जो अपौरुषेय नहीं होता है वह अमूर्त भी नहीं होता है।

❇ अब यहाँ क्रम से सूत्रोक्त उदाहरण देकर समझते हैं।

❇ **परमाणु का दृष्टान्त यहाँ असिद्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है-**

इस परमाणु के दृष्टान्त को अनुमान प्रयोग के साथ लगाने पर वाक्य बनेगा-

जो अपौरुषेय नहीं होता, वह अमूर्त नहीं होता, जैसे परमाणु।

इसका अर्थ हुआ - परमाणु अपौरुषेय नहीं है (साध्य), क्योंकि वह अमूर्त नहीं होता है (साधन)

❇ यहाँ साधन व्यतिरेकता तो घटित हो जाती है कि परमाणु अमूर्त नहीं है किन्तु यहाँ साध्य व्यतिरेकता घटित नहीं होती है कि - 'परमाणु अपौरुषेय नहीं है।' चूँकि परमाणु अपौरुषेय है, किसी के द्वारा बनाया नहीं जा सकता है स्वयं ही अपने परिणमन से 'भेदादणुः' इस सूत्र से वह भेद के कारण अणु बनता है। इसलिए परमाणु का दृष्टान्त असिद्ध साध्य व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है।

❇ **इन्द्रिय सुख का दृष्टान्त यहाँ असिद्ध साधन व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है**

--

इस इन्द्रिय सुख के दृष्टान्त को अनुमान प्रयोग के साथ लगाने पर वाक्य बनेगा-

जो अपौरुषेय नहीं होता, वह अमूर्त नहीं होता जैसे इन्द्रिय सुख।

इसका अर्थ हुआ - इन्द्रिय सुख अपौरुषेय नहीं है (साध्य) क्योंकि वह अमूर्त नहीं है(साधन)।

❖ यहाँ साध्य व्यतिरेकता तो घटित हो जाती है कि 'इन्द्रिय सुख अपौरुषेय नहीं है।' यह बात सच है। अर्थात् इन्द्रिय सुख पौरूषेय है क्योंकि पुरुष के प्रयासों से ही इन्द्रिय सुख की प्राप्ति होती है। किन्तु यहाँ साधन व्यतिरेकता घटित नहीं होती है कि - 'इन्द्रिय सुख अमूर्त नहीं है।' यहाँ डबल निगेटिव होने से पोजीटिव अर्थ होगा कि - 'मूर्त है।' अर्थात् - इन्द्रिय सुख मूर्त है, यह साधन असिद्ध है। क्योंकि सुख कभी भी मूर्त नहीं होता है। सुख देने वाले पदार्थ मूर्त होते हैं लेकिन सुख नहीं क्योंकि सुख दिखाई नहीं देता है। रसगुल्ला तो दिखाई देता हे, जीभ दिखाई देती है लेकिन रसगुल्ला से मिलने वाला सुख दिखाई नहीं देता है क्योंकि वह अमूर्त होता है।

इसलिए इन्द्रिय सुख का यह दृष्टान्त असिद्ध साधन-व्यतिरेक-दृष्टान्ताभास है।

❖ आकाश का दृष्टान्त यहाँ असिद्ध उभय व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है। -

इस आकाश के दृष्टान्त को अनुमान प्रयोग के साथ लगाने पर वाक्य बनेगा -

जो अपौरुषेय नहीं होता, वह अमूर्त नहीं होता जैसे आकाश। इसका अर्थ हुआ - आकाश अपौरुषेय नहीं है (साध्य), क्योंकि वह अमूर्त नहीं है (साधन)।

❖ यहाँ साध्य व्यतिरेकता घटित नहीं होती क्योंकि आकाश अपौरुषेय नहीं है, चूँकि आकाश अपौरुषेय होता है इसलिए यह असिद्ध साध्य व्यतिरेक हुआ।

❖ यहाँ साधन व्यतिरेकता भी घटित नहीं होती है क्योंकि - आकाश अमूर्त नहीं है। चूँकि आकाश अमूर्त है इसलिए साधन भी असिद्ध हुआ।

❖ साध्य और साधन दोनों ही इस दृष्टान्त में असिद्ध हैं इसलिए यह असिद्ध साध्य साधन (उभय) के व्यतिरेक दृष्टान्ताभास का उदाहरण है।

विपरीत व्यतिरेक नाम का दृष्टान्ताभास

''विपरीतव्यतिरेकश्च यन्नामूर्तं तन्नापौरुषेयम्'' ॥45॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
यत्	=	जो
अमूर्तं	=	अमूर्त
न	=	नहीं है
तत्	=	वह
अपौरुषेयम्	=	अपौरुषेय
न	=	नहीं है
विपरीत व्यतिरेकः	=	यह विपरीत व्यतिरेक है।

Meaning:-

Viparita Vyatireka :- the quality of not being without form, is not unproduced by man.

सूत्रार्थ :-

पूवोक्त अनुमान में 'जो अमूर्त्त नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है।' इस प्रकार से विपरीत व्यतिरेक - व्याप्ति को दिखाना भी व्यतिरेक दृष्टान्ताभास है।

❖ जहाँ साध्य का अभाव दिखाकर साधन का अभाव दिखाया जाय सो व्यतिरेक व्याप्ति सही होती है। जैसे अग्नि का अभाव दिखाकर धुँए का अभाव

बताना। जैसे जहाँ अग्नि नहीं है वहाँ धुँआ नहीं है।

❖ यदि व्यतिरेक व्याप्ति उलटी दिखाई जाय तो वह विपरीत व्यतिरेक व्याप्ति हो जाती है। जैसे जहाँ धुँआ नहीं है वहाँ अग्नि भी नहीं है। यह दोष पूर्ण व्याप्ति है।

❖ इस सूत्र में ऐसी ही विपरीत व्यतिरेक व्याप्ति दिखाई गई है जैसे जो अमूर्त नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है। यह नियम तो गलत साबित होगा क्योंकि बिजली आदि अमूर्त नहीं है अर्थात् मूर्त हैं तो भी वे अपौरुषेय नहीं है, मतलब कि पौरूषेय हैं। चूँकि वह बिजली आदि पौरुषेय भी हैं, और कुछ अपौरुषेय भी हैं इसलिए नियम नहीं बना कि जो अमूर्ति नहीं है, वह अपौरुषेय नहीं है। अतः यह विपरीत व्यतिरेक नाम का दृष्टान्ताभास है।

❖ इस तरह दृष्टान्ताभास का स्वरूप सूत्र 40-45 तक छह सूत्रों में पूर्ण हुआ।

बालप्रयोगाभास का स्वरूप

"बालप्रयोगाभासः पञ्चावयवेषु कियद्धीनता" ॥46॥

अन्वयार्थ :-

पञ्च	=	पाँच
अवयवेषु	=	अवयवों में
कियद्धीनता	=	कुछ कितने ही अवयवों की कमी होना
बालप्रयोगाभासः	=	बाल प्रयोगाभास है।

Meaning:-

The fallacy of Bāla-Prayoga consists of absence of one of the five limbs. (of syllogism).

सूत्रार्थ :-

अनुमान के पाँच अवयवों में से कुछ कम अवयवों का प्रयोग करना बाल प्रयोगाभास है।

❖ प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन ये पाँच अवयव बाल बुद्धि के लिए प्रयुक्त होते हैं।

❖ जिन्हें पाँच अवयवों के बिना ज्ञान नहीं हो सकता उनके लिए केवल प्रतिज्ञा और हेतु का कथन कर देना बाल प्रयोगाभास है।

❖ अल्पबुद्धि वाले लोगों के लिए पाँच में से एक या अनेक अवयवों की कमी होना बालप्रयोगाभास है।

तीन अवयवों वाले बाल प्रयोगाभास का उदाहरण

"अग्निमानयं देशो धूमवत्त्वात्, यदित्थं तदित्थं यथा महानस इति" ॥47॥

अन्वयार्थ :-

अयं	=	यह
प्रदेशः	=	प्रदेश
अग्निमान्	=	अग्निवाला है।
धूमवत्त्वात्	=	धूमवाला होने से
यत्	=	जो
इत्थं	=	इस प्रकार है
तत्	=	वह
इत्थं	=	इस प्रकार है
यथा	=	जैसे
महानसः	=	रसोई घर

Meaning:-

This place is full of fire as it is full of smoke. Where there is smoke, There is fire. As for example, a kitchen.

सूत्रार्थ :-

यह प्रदेश अग्निवाला है क्योंकि धूमवाला है, जो इस प्रकार धूमवाला होता है, वह इस तरह अग्निवाला भी होता है। जैसे – रसोईघर

❖ इस सूत्रोक्त अनुमान प्रयोग में बात अधूरी भी लगती है क्योंकि उपनय और निगमन का प्रयोग नहीं किया गया है, जिससे वाक्य पूर्ण नहीं हो पाया। अतः यह बालप्रयोगाभास है।

❖ या तो व्युत्पन्न प्रयोग किया जाय जिसमें पक्ष, हेतु कहना ही पर्याप्त है। जैसे कोई कहे कि – 'यह स्थान अग्नि वाला है, धूमवान् होने से' तो इतना कथन पर्याप्त होता है। यदि बात आगे बढ़ाई है तो फिर उसे पूरी करनी चाहिए अन्यथा वह बाल प्रयोगाभास हो जाता है।

चार अवयवों वाला प्रयोग भी बालप्रयोगाभास

''धूमवांश्चायमिति वा'' ॥48॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
अयं	=	यह
इति वा	=	भी इस प्रकार
धूमवान्	=	धूमवाला है

Meaning:-

Or, this is full of smoke.

सूत्रार्थ :-

इसी प्रकार यह भी धूमवाला है।

❖ सूत्र 47 में पक्ष, हेतु, दृष्टान्त तक का वर्णन किया इसलिए वह बाल प्रयोगाभास था।

❖ इस सूत्र में बात थोड़ी सी आगे और बढ़ाकर उपनय का भी प्रयोग कर दिया है कि – 'इसी प्रकार यह स्थान भी धूमवाला है।' किन्तु साध्य की सिद्धि करने के लिए यदि इसके आगे निगमन का प्रयोग नहीं किया जाय तो भी बात अधूरी ही रही, इसलिए चार अवयवों का प्रयोग भी बालप्रयोगाभास है।

अवयवों का विपरीत प्रयोग करने पर भी प्रयोगाभास

''तस्मादग्निमान् धूमवांश्चायम्'' ॥49॥

अन्वयार्थ :-

तस्मात्	=	इसलिए
अग्निमान्	=	यह अग्निवाला है
च	=	और
अयम्	=	यह
धूमवा	=	धूमवाला है।

Meaning:-

So it is full of fire and it is full of smoke.

सूत्रार्थ :-

इसलिए यह अग्निवाला है और यह भी धूमवाला है।

❖ अनुमान के जो पाँच अवयव बताये हैं उनका उसी क्रम से प्रयोग करना सही प्रयोग है। इसके विपरीत प्रयोग करना भी बालप्रयोगाभास है।

❖ इस सूत्र में निगमन का प्रयोग पहले दिखा कर फिर उपनय का प्रयोग किया है। इसलिए यह विपरीत क्रम बालप्रयोगाभास है।

❖ 'इसलिए यह अग्निवाला है।' यह निगमन है, इसमें प्रतिज्ञा का उपसंहार

है। यह सबसे अन्त में किया जाता है। सूत्र में इसका प्रयोग पहले कर दिया है, यही विपरीतता है।

❖ 'यह भी धूमवान् है।' यह उपनय प्रयोग है। चूँकि दृष्टान्त के प्रयोग के बाद उपनय का प्रयोग होना चाहिए किन्तु इस सूत्र में निगमन के बाद किया है इसलिए यह बाल प्रयोगाभास है।

❖ पूर्वसूत्र 47 से पक्ष, हेतु और दृष्टान्त का प्रयोग करके, उसके आगे इस सूत्र को रखने पर पूरा विपरीत बालप्रयोगाभास होगा।

❖ यह स्थान अग्निवाला है, धूमवाला होने से, जो धूम वाला है वह अग्निवाला होता है जैसे रसोई घर (सूत्र 47) + इसलिए यह अग्निवाला है और धुँए वाला भी है (सूत्र 48)।

प्रयोगाभास का कारण

''स्पष्टतया प्रकृतप्रतिपत्तेरयोगात्'' ॥50॥

अन्वयार्थ :-

स्पष्टतया	=	स्पष्ट रूप से
प्रकृतप्रतिपत्तेः	=	प्रकृत ज्ञान के
अयोगात्	=	योग्य नहीं होने से

Meaning:-

As clear understanding of the real thing is not established from it.

सूत्रार्थ :-

क्योंकि विपरीत अवयव-प्रयोग करने पर स्पष्ट रूप से प्रकृत पदार्थ का ज्ञान नहीं होता।

❖ पाँच अवयवों से हीन प्रयोग करने पर या विपरीत क्रम से अवयवों का

प्रयोग करने पर बालप्रयोगाभास होता है। इसका कारण यह है कि इस प्रकार के प्रयोग से प्रासंगिक विषय का ठीक-ठीक ज्ञान नहीं होता है। बाल बुद्धि वालों को भी भ्रम उत्पन्न होता है इसलिए इसे बाल प्रयोगाभास कहते हैं।

❖ इस तरह बाल प्रयोगाभास का वर्णन सूत्र 46 से 50 तक इन पाँच सूत्रों में पूर्ण हुआ।

❖ इस तरह सूत्र 11 से जो अनुमानभास का वर्णन करना प्रारम्भ किया था वह सूत्र 50 पर पूर्ण हुआ।

आगमाभास का स्वरूप

''रागद्वेषमोहाक्रान्तपुरुषवचनाज्जातमागमाभासम्'' ॥51॥

अन्वयार्थ :-

रागद्वेषमोहाक्रान्त-	=	रागद्वेष मोह से आक्रान्त
पुरुषवचनात्	=	पुरुष के वचन से
जातम्	=	उत्पन्न हुआ
आगमाभासम्	=	आगमाभास है

Meaning:-

Fallacy of Āgama arises from words of a person seized by attachment, hatred, mistake etc.

सूत्रार्थ :-

रागद्वेष मोह से आक्रान्त [व्याप्त] पुरुष के वचनों से उत्पन्न हुए पदार्थ के ज्ञान को आगमाभास कहते हैं।

❖ राग, द्वेष, मोह से रहित पुरुष आप्त होता है। आप्त ही वीतराग और सर्वज्ञ होते हैं इसलिए उनके वचन आगम प्रमाण होते हैं।

❖ इसके विपरीत जिस पुरुष के वचन राग-द्वेष-मोह से आक्रान्त हैं वह आप्ताभास है। उसके पास वीतरागता और सर्वज्ञता नहीं हो सकती है, इसलिए

उसके वचन भी आगमाभास होते हैं।

आगमाभास का उदाहरण

''यथा नद्यास्तीरे मोदकराशयः सन्ति धावध्वं माणवकाः'' ॥ 52 ॥

अन्वयार्थ :-

यथा	=	जैसे
नद्याः	=	नदी के
तीरे	=	किनारे पर
मोदकराशयः	=	लड्डूओं के ढेर
सन्ति	=	हैं
माणवकाः	=	बालको
धावध्वं	=	दौड़ो।

Meaning:-

As for example, Run Boys. There are a large quantity of sweetmeats on the river-bank.

सूत्रार्थ :-

जैसे हे बालको! दौड़ो, नदी के किनारे लड्डुओं/मोदकों की राशियाँ पड़ी हुई है।

❖ पिछले सूत्र में आगमाभास के कारणभूत पुरुष में तीन कारण बताए है – राग, द्वेष, मोह

❖ इस सूत्र में राग, द्वेष से आक्रान्त पुरुष के वचनों को आगमाभास सिद्ध किया है।

❖ **राग से आक्रान्तवचन** – राग के वशीभूत हुआ कोई प्राणी बच्चों के

साथ खेलने की इच्छा से, अपना मन बहलाने के लिए और अपने मन को आनन्दित करने के लिए जब कहता है कि – 'बालको! दौड़ो, उस नदी के किनारे पर लड्डु रखे हैं।' तो यह रागाक्रान्त वचन आगमाभास कहलाते हैं।

❖ **द्वेष से आक्रान्तवचन** – द्वेष के वशीभूत हुआ कोई आदमी जब उन्हीं बच्चों की क्रीड़ा से परेशान होता है और वह उनसे पीछा छुड़ाने के लिए, बलाय टालने के लिए कहता है कि – 'बालको! दौड़ो, उस नदी के किनारे पर लड्डू रखे हैं।' तो यह द्वेषाक्रान्त पुरुष के वचन भी आगमाभास कहलाए।

मोहाक्रान्त पुरुष का आगमाभास

''अङ्गुल्यग्रे हस्तियूथशतमास्त इति च'' ॥ 53 ॥

अन्वयार्थ :-

च	=	और
अंगुल्यग्रे	=	अंगुली के अग्र भाग पर
हस्तियूथशतम्	=	सैकड़ो हाथियों केसमुदाय
आस्ते	=	रहते हैं
इति	=	इस प्रकार के वचन।

Meaning:-

Or, one hundred elephants are standing on the tip of the finger.

सूत्रार्थ :-

अंगुली के अग्रभाग पर हाथियों के सैकड़ों समुदाय विद्यमान हैं, यह कहना भी आगमाभास है।

❖ मोह से आक्रान्त पुरुष के वचन भी आगमाभास हैं। यह इस सूत्र में

उदाहरण देकर बताया है।

❈ मोह यानी मिथ्यात्व। मिथ्यात्व से दूषित सांख्यों के सिद्धान्त को यहाँ उदाहरण देकर प्रस्तुत किया है।

❈ सांख्य लोग मानते हैं कि– सब कुछ सब जगह, सभी समय पर रहता है। बस, कभी कुछ प्रकट हो जाता है तो दिखने लग जाता है अन्यथा वह तिरोहित रहता है। आविर्भाव – तिरोभाव के इस सिद्धान्त के अनुसार तो यदि सांख्य कहें कि – 'अंगुली के अग्र भाग पर सैकड़ों हाथियों का झुण्ड है।' तो यह कथन भी आगमाभास है।

आगमाभास का कारण

"विसंवादात्" ॥54॥

अन्वयार्थ :-

विसंवादात् = विसंवाद होने से

Meaning:-

Because (these) want (the element of Pramāṇa) viz. true knowledge.

सूत्रार्थ :-

विसंवाद होने से

❈ सूत्र 52-53 में जो राग-द्वेष – मोह से आक्रान्त पुरुष का उदाहरण दिया गया है वह आगमाभास का उदाहरण है। वह आगमाभास क्यों है ? इसका उत्तर इस सूत्र में दिया गया है – विसंवाद होने से।

❈ विसंवाद का अर्थ है झूठ होना। जब झूठ होता है तो झगड़ा होता है। इसलिए विसंवाद यानी विवाद।

❈ पदार्थ के यथार्थ स्वरूप से विचलित होना भी विसंवाद है।

❈ राग, द्वेष से आक्रान्त पुरुष जब उन बालकों को नदी के किनारे भेजेगा और वहाँ जाकर जब उन बच्चों को लड्डू नहीं मिले तो उस व्यक्ति की बात झूठी हुई जिससे विसंवाद होगा।

❈ इसी तरह मोहाक्रान्त पुरुष की इस बात पर कौन प्रत्यक्ष से विश्वास करेगा कि – 'अंगुली के आगे के भाग पर सैकड़ों हाथियों का झुण्ड है।' फिर भी सांख्य मत वाला कहे कि – तुम समझते नहीं हो, सभी वस्तुएँ सब जगह रहती है तो इन वचनों को सुनकर भी विसंवाद ही बढ़ेगा।

❈ इन वचनों से या सिद्धान्तों से कोई आत्महित भी नहीं है इसलिए यह आगमाभास है।

❈ इस प्रमाण आगमाभास का वर्णन सूत्र 51,52,53,54 इन चार सूत्रों में पूर्ण हुआ।

❈ इस तरह यहाँ तक प्रमाण भेदाभास का वर्णन सूत्र 6 से प्रारम्भ होकर पूर्ण हुआ।

संख्याभास का स्वरूप

"प्रत्यक्षमेवैकं प्रमाणमित्यादि संख्याभासम्" ॥55॥

अन्वयार्थ :-

प्रत्यक्षम्	=	प्रत्यक्ष
एव	=	ही
एकम्	=	एक
प्रमाणम्	=	प्रमाण है
इत्यादि	=	इस रूप से कहना
संख्याभासम्	=	संख्याभास है।

Meaning:-

Saṅkhyābhāsa (Fallacy of number) is maintaining 'Pratyakṣa is the only Pramāṇa' etc.

सूत्रार्थ :-

प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है इत्यादि कथन संख्याभास है।

❇ प्रत्यक्ष ही एक प्रमाण है यह प्रमाण की एक संख्या मानना संख्याभास है।

❇ एक के अलावा यदि कोई दो संख्या भी माने जैसे जैनाचार्यों ने मानी है लेकिन उस संख्या में सभी प्रमाण अन्तर्भूत न हों तो वह भी प्रमाणाभास है।

❇ जैसे बौद्ध लोग दो प्रमाण मानते हैं प्रत्यक्ष, अनुमान। तो इन दो प्रमाणों में प्रमाण के सभी भेद समाहित नहीं होते हैं इसलिए यह संख्याभास है। जब कि जैनाचार्यों ने दो प्रमाण प्रत्यक्ष और परोक्ष माने हैं। जिनमें प्रमाण के सभी भेद अन्तर्भूत हो जाते हैं।

एक प्रत्यक्ष प्रमाण मानना संख्याभास क्यों है ?

''लौकायतिकस्य प्रत्यक्षतः परलोकादिनिषेधस्य परबुद्ध्यादेश्चासिद्धेरतद्विषयत्वात्'' ॥56॥

अन्वयार्थ :-

लौकायतिकस्य	=	चार्वाक के
प्रत्यक्षतः	=	प्रत्यक्ष से
परलोकादिनिषेधस्य	=	परलोक आदि का निषेध
च	=	और
परबुद्ध्यादेः	=	परबुद्धि आदि की
असिद्धेः	=	सिद्धि न होने से
अतद्विषयत्वात्	=	क्योंकि उसके विषय न होने से।

Meaning:-

Because According to the view of the followers of Chārvāka philosophy the other world is denied from Pratyakṣa and knowledge of others can not be derived (from Pratyakṣa), so these cannot be the subject matter of it. (Pratyakṣa).

सूत्रार्थ :-

चार्वाक अर्थात् नास्तिकमती चार्वाक का केवल एक प्रत्यक्ष को ही प्रमाण मानना इसलिए संख्याभास है कि प्रत्यक्ष से परलोक आदि का निषेध और पर की बुद्धि आदि की सिद्धि नहीं होती है क्योंकि वे उसके विषय नहीं है।

❇ लौकायतिक - नास्तिक मती चार्वाक मतवालों को कहते हैं।

❇ ये लोग परलोक का निषेध करते हैं अर्थात् स्वर्ग, नरक कुछ नहीं होते हैं और परबुद्धि (पर-आत्मा) आदि का भी निषेध करते हैं। लेकिन एक प्रत्यक्ष प्रमाण से तो इन बातों का निषेध नहीं हो सकता है। किसी वस्तु का निषेध करने के लिए भी कुछ तर्क देना पड़ेगा, कुछ व्याप्ति बनानी पड़ेगी, कुछ अनुमान करना होगा। यदि ऐसा कुछ किया तो प्रमाण प्रत्यक्ष ही है, यह एक संख्या बाधित होगी और बिना अनुमानादि के निषेध भी सम्भव नहीं है। इसलिए प्रत्यक्ष प्रमाण का विषय ही नहीं है कि वह परलोक आदि का निषेध कर सके। इस तरह चार्वाकों की प्रमाण संख्या प्रमाणाभास सिद्ध होती है।

अन्यमत में संख्याभास का कथन

''सौगतसाङ्ख्ययौगप्राभाकरजैमिनीयानां

प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्त्यभावैरेकैकाधिकैर्व्याप्तिवत्'' ॥57॥

अन्वयार्थ :-

सौगत–	=	बुद्ध,
सांख्य–	=	सांख्य,
यौग–	=	योग,
प्राभाकर–	=	प्रभाकर,
जैमिनीयानाम्	=	जैमिनीयों के
प्रत्यक्षानुमानागमोपमानार्थापत्ति–अभावैः	=	प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव द्वारा
एकैक–	=	एक–एक
अधिकैः	=	अधिक के द्वारा
व्याप्तिवत्	=	व्याप्ति के समान जानना।

Meaning:-

Like Vyāpti in case of the following of the Buddhist, Sāṇkhya, Nyāya, Prābhākara (school of Mimāṃsa philosophy) and Jaimini (School of Mimāṃsa Philosophy) who accept Pratyakṣa, Anumāna, Āgama, Upamāna, Arthāpatti and Abhāva exceeding one by one (in their doctrines respectively).

सूत्रार्थ :-

जिस प्रकार सौगत, सांख्य, यौग, प्राभाकर और जैमिनीयों के प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव इन एक–एक अधिक प्रमाणों के द्वारा व्याप्ति विषय नहीं की जाती है।

❈ सौगत (बौद्ध) की प्रमाण संख्या–	2	–प्रत्यक्ष, अनुमान

❈ सांख्य की प्रमाण संख्या –	3	– प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम
❈ यौग की प्रमाण संख्या –	4	– प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान
❈ प्राभाकर की प्रमाण संख्या–	5	– प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति
❈ जैमिनीय की प्रमाण संख्या–	6	– प्रत्यक्ष, अनुमान, आगम, उपमान, अर्थापत्ति और अभाव।

❈ इन मतों में किसी ने भी किसी भी प्रमाण से व्याप्ति (अविनाभाव सम्बन्ध) नहीं माना है। बताओ! बिना व्याप्ति की सिद्धि के परोक्ष प्रमाण कैसे होगा और उसके बिना अन्य प्रमाणों से क्या प्रयोजन ? इस तरह ये सभी संख्याभास हैं।

संख्याभास का कारण

"अनुमानादेस्तद्विषयत्वे प्रमाणान्तरत्वम्" ॥58॥

अन्वयार्थ :-

अनुमानादेः	=	अनुमान आदि से
तत्	=	उस परबुद्धि का
विषयत्वे	=	विषयपना होने पर
प्रमाणान्तरत्वम्	=	प्रमाणन्तरपना होता है।

Meaning:-

Knowledge of others being the subject of Anumāna etc. will become another Pramāṇa.

सूत्रार्थ :-

अनुमानादि से पर–बुद्धि आदिक का विषयपना मानने पर अन्य प्रमाणों के मानने का प्रसंग आता है।

❇ परलोक का निषेध और पर बुद्धि का ग्रहण आदि जो हमें दिखाई नहीं देती है ऐसी वस्तुओं का विषय अनुमान आदि प्रमाण के द्वारा ही होता है। चार्वाक एक प्रत्यक्ष प्रमाण ही मानते हैं। यदि वे प्रत्यक्ष के अलावा कुछ और प्रमाण मानेंगे तो प्रमाणान्तर (अन्य प्रमाण) मानने का प्रसंग आ जाएगा जिससे उनकी एक संख्या का विघटन हो जाएगा। जिससे संख्याभास होगा।

संख्याभास समझाने के लिए अन्य दर्शन का उदाहरण

"तर्कस्येव व्याप्तिगोचरत्वे प्रमाणान्तरत्वमप्रमाणस्या व्यवस्थापकत्वात्" ॥59॥

अन्वयार्थ :-

तर्कस्य	=	तर्क के
इव	=	समान
व्याप्तिगोचरत्वे	=	व्याप्ति को विषय करने वाला होने पर
प्रमाणान्तरत्वम्	=	एक भिन्नप्रमाणापना मानना होगा।
अप्रमाणस्य	=	अप्रमाणज्ञान
अव्यवस्थापकत्वात्	=	व्यवस्था नहीं कर सकेगा।

Meaning:-

Tarka also being understood from Vyāpti will become another Prāmaṇa. For that which is not Pramāṇa can not establish anything.

सूत्रार्थ :-

जैसे कि तर्क को व्याप्ति का विषय करने वाला मानने पर सौगतादिक को उसे एक भिन्न प्रमाण मानना पड़ता है क्योंकि अप्रमाण ज्ञान पदार्थ की व्यवस्था नहीं कर सकता है।

❇ यह सूत्र चार्वाक मत आदि मतों के लिए उदाहरण स्वरूप भी है और उनके लिए दूषण रूप भी है।

❇ तर्क से व्याप्ति का निर्णय होता है। प्रत्यक्ष, अनुमान आदि जितने भी प्रमाण बताए हैं, उनमें व्याप्ति किसी प्रमाण में नहीं होती है, मात्र तर्क से ही होती है और तर्क को प्रमाण मानने पर प्रमाणान्तर मानना पड़ेगा। यदि किसी अन्य प्रमाण को मानेंगें तो वह उनके लिए अप्रमाण होगा और अप्रमाण भला कैसे किसी पदार्थ की सिद्धि की व्यवस्था कर सकेगा ?

प्रमाणों में भेद-भिन्नता का कारण

"प्रतिभासभेदस्य च भेदकत्वात्" ॥60॥

अन्वयार्थ :-

च	=	तथा
प्रतिभासभेदस्य	=	प्रतिभास के भेद का
भेदकत्वात्	=	भेदकपना होने से

Meaning :-

Because there is a difference according to difference of illumination.

सूत्रार्थ :-

प्रतिभास का भेद ही प्रमाणों का भेदक होता है।

❇ प्रमाणों की यह भेद भिन्नता ज्ञान के प्रतिभास की भिन्नता पर निर्भर करती है। यानि कि प्रत्येक ज्ञान का प्रतिभास (अनुभूति) भिन्न-भिन्न होती है।

❇ अनुमान - ज्ञान का प्रतिभास (अनुभूति या जानना) अन्य प्रमाणों से भिन्न है। उसे प्रत्यक्ष प्रमाण में नहीं समाहित कर सकते हैं क्योंकि प्रत्यक्ष तो पदार्थों को इन्द्रिय, मन के माध्यम से स्पष्ट जानने का नाम है। इसलिए चार्वाकों को

अनुमान की भिन्न प्रतीति स्वीकारनी पड़ेगी। जिसे स्वीकार ने पर उनके यहाँ संख्याभास का प्रसंग होगा।

❖ इसी तरह बौद्धों को तर्क प्रमाण मानना होगा क्योंकि उस तर्क ज्ञान की प्रतीति भिन्न रूप से होती है उसे अनुमान में गर्भित नहीं किया जा सकता है, क्योंकि अनुमान का प्रतिभास भिन्न प्रकार का है। इसलिए बौद्ध मत में भी संख्याभास होगा।

❖ इसी तरह अन्य मतों में जानना क्योंकि छह-छह प्रमाण स्वीकारते हुए भी तर्क, प्रत्यभिज्ञान आदि किसी ने नहीं माने जो कि भिन्न रूप से अनुभव में आते हैं।

❖ जिस तरह पदार्थ में एक धर्म की ही उपलब्धि नहीं होने से उसे अनेकान्त स्वरूप मानना पड़ता है क्योंकि वस्तु वैसी ही प्रतीति में आती है। इसी प्रकार व्याप्ति, स्मरण, प्रत्यभिज्ञानों की भी उपलब्धि होती हैं क्योंकि ये इसी रूप में अनुभव में आते हैं। यह वस्तु का स्वरूप है। इसे सर्वज्ञ वाणी के अलावा कोई भी सही रूप से नहीं बता पाया। इसी से जाना जाता है कि बौद्ध आदि सर्वज्ञ नहीं थे।

❖ इस तरह सूत्र 55 से 60 तक संख्याभास का वर्णन 6 सूत्रों में पूर्ण हुआ।

विषयाभास का कथन

"विषयाभासः सामान्यं विशेषो द्वयं वा स्वतन्त्रम्" ॥61॥

अन्वयार्थ :-

सामान्यं	=	केवल सामान्य
विशेषः	=	केवल विशेष
वा	=	अथवा
द्वयं	=	सामान्य
स्वतन्त्रम्	=	स्वतन्त्र विशेष दोनो तन्त्र मानना
विषयाभासः	=	विषयाभास है।

Meaning :-

Viṣayābhāsa (fallacy of object) (happens) where Sāmānya or Vīsēṣa are both of them (are) Seperately (accepted).

सूत्रार्थ :-

केवल सामान्य को, अथवा केवल विशेष को अथवा स्वतन्त्र दोनों को प्रमाण का विषय मानना विषयाभास है।

❖ प्रमाण (ज्ञान) जिस पदार्थ को जाने वह पदार्थ उस प्रमाण का विषय कहलाता है। वह पदार्थ सामान्य विशेषात्मक होता है।

❖ ऐसा कोई भी सत् पदार्थ नहीं है जो मात्र सामान्य हो, या जो मात्र विशेष हो, या सामान्य, विशेष स्वतन्त्र रूप से हो।

❖ जितने भी अद्वैतवादी हैं, चाहें वे ब्रह्माद्वैतवादी, विज्ञानाद्वैतवादी आदि ही क्यों न हों वे सभी पदार्थों को एक ब्रह्म रूप, एक विज्ञान रूप आदि सामान्य रूप से मानते हैं।

❖ बौद्ध पदार्थों को मात्र विशेष रूप ही मानते हैं, जो कि एक समयवाला भावात्मक पदार्थ है।

❖ यौग सिद्धान्त वाले सामान्य, विशेष दोनों स्वतन्त्र रूप से मानते हैं। कोई पदार्थ नित्य है, कोई अनित्य। जैसे परमाणु। कारण परमाणु नित्य है। कार्य परमाणु अनित्य है। ऐसा अलग - अलग मानते हैं।

❖ जैनाचार्य कहते हैं कि कोई भी सत् पदार्थ सामान्य-विशेषात्मक, नित्यानित्यात्मक दोनों स्वरूप वाला होता है।

❖ प्रत्येक पदार्थ को अनेक धर्मों से सहित नहीं मानना ही विषयाभास है।

विषयाभास का कारण

"तथाऽप्रतिभासनात्कार्याकरणाच्च" ॥62॥

अन्वयार्थ :-

तथा	=	उसी प्रकार
अप्रतिभासनात्	=	प्रतिभास न होने से
च	=	और
कार्य-	=	कार्य को
अकरणात्	=	न करने वाला होने से

Meaning :-

As it (does not)appears like the same, and as it does not do any work.

सूत्रार्थ :-

उस प्रकार का प्रतिभास न होने से और कार्य को नहीं करने से वह विषयाभास होता है।

❖ तथा अप्रतिभासनात्- वैसा प्रतिभास (अनुभव) में नहीं आने से। अर्थात् वस्तु केवल सामान्य रूप, अथवा केवल विशेष रूप अथवा केवल पृथक्-पृथक् सामान्य, विशेष रूप अनुभव में नहीं आती है।

❖ कार्याकरणात् - मात्र सामान्य आदि रूप माना गया पदार्थ कोई भी कार्य नहीं कर सकता है अर्थात् ऐसे पदार्थ में कोई अर्थक्रिया (प्रयोजन) सिद्धि नहीं होती है।

❖ जो पदार्थ केवल सामान्य रूप है, अथवा विशेष रूप है तो वह

1. क्या स्वयं समर्थ होता हुआ कार्य कर लेगा ?

2. या असमर्थ होता हुआ कार्य कर लेगा ?

इन्हीं दोनों प्रश्नों का उत्तर आगे के सूत्र में क्रम से दिया जाना है।

पदार्थ को स्वयं समर्थ मानने पर आने वाला दोष -

"समर्थस्य करणे सर्वदोत्पत्तिरनपेक्षत्वात्" ॥63॥

अन्वयार्थ :-

समर्थस्य	=	समर्थ पदार्थ
करणे	=	कार्य करने पर
सर्वदा	=	हमेशा
उत्पत्तिः	=	उत्पन्न होता रहे
अनपेक्षत्वात्	=	अपेक्षा न होने से।

Meaning :-

Accepting it to be samartha (effective) will lead to creating (of result) at all times, being independant.

सूत्रार्थ :-

समर्थ पदार्थ के कार्य करने पर अपेक्षा न होने से हमेशा कार्य की उत्पत्ति का प्रसंग आता है।

❖ जो पदार्थ स्वयं कार्य करने में समर्थ है तो हमेशा उसका कार्य उत्पन्न होते रहने का प्रसंग आ जाएगा।

❖ यदि वह पदार्थ समर्थ है तो किसी की अपेक्षा भी नहीं रखेगा। पर - निमित्तों की अपेक्षा रखे बना यदि कोई पदार्थ कार्य करता है तो उसके भविष्य में होने वाले सभी परिणमन एक ही समय में एक साथ क्यों न होंगे ? अर्थात् अवश्य होने का प्रसंग आ जाएगा।

पर की अपेक्षा रखने पर होने वाला दोष

"परापेक्षणे परिणामित्वमन्यथा तदभावात्" ॥64॥

अन्वयार्थ :-

परापेक्षणे	=	दूसरे सहकारी की अपेक्षा होने पर
परिणामित्वम्	=	परिणामी पना होता है।
अन्यथा	=	अन्यथा
तत्	=	उस कार्य का
अभावात्	=	अभाव होगा।

Meaning :-

On accepting dependency on other (causes), the quality of being modified will have to be accepted as otherwise, this does not exist.

सूत्रार्थ :-

दूसरे सहकारी कारणों की अपेक्षा रखने पर परिणामीपना प्राप्त होता है। अन्यथा कार्य नहीं हो सकता है।

❇ पर की अपेक्षा रखना अर्थात् दूसरे सहकारी कारणों के मिलने पर ही यदि आप कार्य का होना मानते हैं तो वह पदार्थ परिणामी सिद्ध होगा।

❇ अन्यथा पर की अपेक्षा नहीं रखने पर परिणामीपने का भी अभाव होगा।

❇ यदि पदार्थ स्वयं समर्थ है और पर की अपेक्षा भी रख रहा है तो ये दोनों बातें विरोधी हुईं, ऐसी स्थिति में आपका पदार्थ विषयाभास ही हुआ।

पदार्थ को असमर्थ मानने पर आने वाला दोष –

"स्वयमसमर्थस्याकारकत्वात्पूर्ववत्" ॥65॥

अन्वयार्थ :-

स्वयम्	=	स्वयं ही
असमर्थस्य	=	असमर्थ पदार्थ

अकारकत्वात्	=	कार्य करने वाला नहीं होने से
पूर्ववत्	=	प्रथम पक्ष के समान ।

Meaning :-

Because that which is ineffective in itself can not cause anything as the former.

सूत्रार्थ :-

स्वयं असमर्थ पदार्थ कार्य का करने वाला नहीं हो सकता। जैसे कि वह सहकारी कारणों से रहित अवस्था में अपना कार्य करने के लिए असमर्थ था। उसी प्रकार सहकारी कारणों के मिल जाने पर भी अपना कार्य करने में असमर्थ रहेगा।

❇ जो स्वयं असमर्थ है उसे कोई समर्थ नहीं बना सकता। वह कारक (कार्य, क्रिया करने वाला) नहीं बना सकता है।

❇ पूर्ववत् का अर्थ है कि जैसे पदार्थ सहकारी कारणों से रहित अवस्था में अपरिणामी और असमर्थ था उसी प्रकार अब सहकारी कारणों के मिल जाने पर अपना कार्य करने में अभी भी असमर्थ ही रहेगा। जब पदार्थ को सदा असमर्थ ही मान लिया गया तो फिर वह सहकारी कारणों के मिलने से पहले जैसे कुछ नहीं कर सकता था वैसे ही सहकारी कारणों के मिलने के बाद भी नहीं कर पाएगा। अन्यथा पदार्थ सदाकाल असमर्थ है, यह प्रतिज्ञा भंग होगी।

❇ इस तरह पदार्थ को असमर्थ मानने वाला पक्ष भी दूषित हुआ।

❇ यहाँ विषयाभास का वर्णन सूत्र 61 से 65 तक 5 सूत्रों में पूर्ण हुआ।

फलाभास का वर्णन

"फलाभासं प्रमाणादभिन्नं भिन्नमेव वा" ॥66॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाणात्	=	प्रमाण से

अभिन्नं	=	अभिन्न
वा	=	अथवा
भिन्नं	=	भिन्न
एव	=	ही है
फलाभासम्	=	वह फलाभास है।

Meaning :-

Phālābhasa (fallacy of result) is either seperate or not seperate from Pramāṇa.

सूत्रार्थ :-

प्रमाण से उसके फल को सर्वथा अभिन्न तथा भिन्न मानना फलाभास है।

❖ प्रमाण से प्रमाण का फल सर्वथा भिन्न (भेद) मान लिया जाय या सर्वथा अभिन्न (एकमेक) मान लिया जाय तो वह फलाभास होता है।

सर्वथा अभिन्न मानने पर फलाभास होने का कारण

"अभेदे तद्व्यवहारानुपपत्तेः" ॥67॥

अन्वयार्थ :-

अभेदे	=	अभेद में
तद्-व्यवहार-अनुपपत्तेः	=	उन दोनों के व्यवहार की प्राप्ति नहीं हो सकेगी।

Meaning :-

If we accept inseparableness, its (seperate) use can not happen.

सूत्रार्थ :-

यदि प्रमाण से फल सर्वथा अभिन्न माना जाय, तो यह प्रमाण है और यह

उसका फल है ऐसा भेद व्यवहार नहीं बन सकेगा।

❖ एकान्त रूप से प्रमाण और प्रमाण का फल अभिन्न है, ऐसा बौद्धों की तरह मानते हैं तो फिर यह कहना भी न बन सकेगा कि यह प्रमाण है और यह उसका फल है।

व्यावृत्ति से भी प्रमाण और उसके फल की कल्पना का अभाव

"व्यावृत्त्यापि न तत्कल्पना फलान्तराद् व्यावृत्त्याऽफलत्वप्रसङ्गात्" ॥ 68॥

अन्वयार्थ :-

व्यावृत्त्या अपि	=	व्यावृत्ति से भी
तत्कल्पना	=	उस फल की कल्पना
न	=	नहीं हो सकती है।
फलान्तरात्	=	फलान्तर से
व्यावृत्त्या	=	व्यावृत्ति के द्वारा
अफलत्व प्रसङ्गात्	=	अफलपने का प्रसंग आएगा।

Meaning :-

Its imagination by its opposite cannot (be accepted) for (we) shall have to assume (than) non-result by its opposite (e.g.) another result.

सूत्रार्थ :-

व्यावृत्ति से भी फल की कल्पना नहीं की जा सकती है अन्यथा फलान्तर की

व्यावृत्ति से अफलपने की कल्पना का प्रसंग आयेगा।

❖ व्यावृत्ति से फल की कल्पना बौद्ध लोग करते हैं। जैसे फल क्या है ? तो अफल व्यावृत्ति, अर्थात् जो फल नहीं है उसकी व्यावृत्ति होना (अभाव होना) फल है। इसी प्रकार मनुष्य क्या है ? तो अमनुष्य-व्यावृत्ति, जो मनुष्य नहीं, उसकी व्यावृत्ति होना, यानि हट जाना सो मनुष्य है। ऐसी कल्पना मानने पर आचार्य कहते हैं कि फिर तो फलान्तर से व्यावृत्ति होने का नाम अफल हो जाएगा। ऐसी दशा में अन्य सजातीय फल की व्यावृत्ति से अफल की कल्पना भी करनी पड़ेगी। इसलिए अन्य की व्यावृत्ति से जो आप फल का व्यवहार करना चाहते हैं, वह नहीं हो सकता है।

उसी का दृष्टान्त

"प्रमाणान्तराद् व्यावृत्त्यैवाप्रमाणत्वस्य" ॥69॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाणान्तरात्	=	प्रमाणान्तर की
व्यावृत्त्या	=	व्यावृत्ति से
एव	=	ही
अप्रमाणत्वस्य	=	अप्रमाणपने का प्रसंग आता है

Meaning :-

Just as Apramana is derived from Pramāṇa by holding the opposite.

सूत्रार्थ :-

अन्य प्रमाण की (प्रमाणान्तर की) व्यावृत्ति (निराकरण) से अप्रमाणपने का प्रसंग आता है।

❖ पूर्व की तरह व्यावृत्ति से फल की कल्पना कर लेने पर एक दोष यह भी

होगा कि जिस तरह आप बौद्ध लोग अप्रमाण की व्यावृत्ति (हट जाने) से उसे प्रमाण कहते हैं उसी प्रकार कोई प्रमाणान्तर (अन्य सजातीय प्रमाण) की व्यावृत्ति से उसे अप्रमाण भी कह सकता है।

❖ सारांश यह है कि व्यावृत्ति से यदि आप प्रमाण फल की कल्पना करते हैं तो कोई उसी व्यावृत्ति का ही सहारा लेकर उस फल को अफल भी बना सकता है।

❖ यहाँ दृष्टान्त प्रमाण का दिया है कि अप्रमाण की व्यावृत्ति होने से जैसे प्रमाण की सिद्धि होती है उसी प्रकार कोई अन्य प्रमाण (सजातीय प्रमाण) भी व्यावृत्ति से उसे अप्रमाण भी कह सकता है। इसलिए प्रमाण से उसके फल को सर्वथा अभिन्न मानना ठीक नहीं है।

प्रमाण और फल में भेद वास्तविक है

"तस्माद्वास्तवो भेदः" ॥70॥

अन्वयार्थ :-

तस्मात्	=	इसलिए उनमें
वास्तवः	=	वास्तविक
भेदः	=	भेद है

Meaning :-

So, really there is no difference.

सूत्रार्थ -

इसलिए प्रमाण और फल में वास्तविक भेद है।

❖ इसलिए आप बौद्ध लोग व्यावृत्ति की कल्पना से प्रमाण और प्रमाण फल में भेद न मानें किन्तु उनमें भेद वास्तविक है। यह स्वीकारना चाहिए।

❖ यदि प्रमाण और फल का भेद वास्तविक न माना जाय तो प्रमाण और फल का व्यवहार ही नहीं बन सकता है क्योंकि व्यवहार भी वास्तविकता में ही

प्रवृत्त होता है कोरी कल्पना मे नहीं।

❖ इस सूत्र को यूं भी कुछ लोग कहते हैं –

तस्माद् वास्तवोऽभेदः। इसलिए प्रमाण और फल मे वास्तविक अभेद है, कल्पना से नहीं। अंग्रेजी अनुवाद इसी आधार से किया गया है।

❖ यहाँ 'अभेद' अर्थ ही ज्यादा उचित लगता है क्योंकि अभेद फल का प्रकरण यहाँ पूर्ण होता है।

सर्वथा भेद मानने पर दूषण

"भेदे त्वात्मान्तरवत्तदनुपपत्तेः" ॥71॥

अन्वयार्थ :-

भेदे	=	भेद में
तु	=	तो
आत्मान्तरवत्	=	अन्य आत्मा के समान
तत्	=	वह प्रमाण और प्रमाणफल
अनुपपत्तेः	=	हो नहीं सकता है।

Meaning :-

(If) difference (be accepted), it will not be derived as in the case of another soul.

सूत्रार्थ :-

भेद मानने पर तो अन्य आत्मा के समान यह इस प्रमाण का फल है, ऐसा व्यवहार नहीं हो सकेगा।

❖ नैयायिक लोग प्रमाण और फल को सर्वथा भिन्न मानते हैं।

❖ यदि आप प्रमाण और फल को सर्वथा भिन्न मानेंगे तो हमारी आत्मा के प्रमाण का फल हमें ही मिले यह कोई जरूरी नहीं होगा जैसे दूसरी आत्मा के प्रमाण

का फल हमारी आत्मा के प्रमाण का फल नहीं होता है।

समवाय से फल मानने पर दूषण

"समवायेऽतिप्रसङ्गः" ॥72॥

अन्वयार्थ :-

समवाये	=	समवाय में
अतिप्रसंगः	=	अतिप्रसंग का दोष आता है

Meaning :-

There will be Atiprasaṅga (If we urge) Samavāya.

सूत्रार्थ :-

समवाय के मानने पर अतिप्रसंग का दोष आता है।

❖ नैयायिक लोग समवाय के माध्यम से सभी द्रव्य और गुणों का संयोग मानते हैं इसी प्रकार समवाय से यदि प्रमाण फल अपनी आत्मा में ही मिलेगा तो आचार्य कहते है कि वह समवाय तो नित्य, एक, व्यापक है उसका काम यह तो नहीं है कि फल को आपकी आत्मा से ही चिपकाए। समवाय का काम यदि संयोग में सहायक पना है तो किसी की भी आत्मा के प्रमाण फल का संयोग किसी भी आत्मा में हो जाएगा । इस तरह अति प्रसंग दोष आएगा।

इस तरह फलाभास का वर्णन सूत्र 66 से 72 तक 7 सूत्रों में पूर्ण हुआ।

इस ग्रन्थ को जानने का फल

"प्रमाणतदाभासौ दुष्टतयोद्भावितौ परिहृतापरिहृतदोषौ वादिनः साधनतदाभासौ प्रतिवादिनो दूषणभूषणे च" ॥73॥

अन्वयार्थ :-

प्रमाण–	=	प्रमाण
तदाभासौ	=	और तदाभास

दुष्टतयोद्भावितौ	=	दोषरूप में प्रकट किए जाने पर
परिहृतदोष-अपरिहृत-दोषौ	=	परिहार दोष और अपरिहार दोषवाले
वादिनः	=	वादी के द्वारा
साधनतदाभासौ	=	साधन और साधनाभास
प्रतिवादिनः	=	प्रतिवादी को
दूषणभूषणेच	=	दूषण और भूषण हैं।

Meaning :-

Pramāṇa and its Ābhāsa being shown as faulty and being made free from or connected with fault will be Sādhana or its Ābhāsa in case of the Vādi and Dūsaṇa (fault) or Bhūsaṇa (adornment) respectively of Prativādi (opponent).

सूत्रार्थ :-

वादी के द्वारा प्रयुक्त प्रमाण और प्रमाणाभास प्रतिवादी के द्वारा दोषरूप से उद्भावित किए जाने पर वादी से परिहृत दोषवाले और अपरिहृत दोष वाले रहते हैं तो वे वादी के लिए साधन और साधनाभास है और प्रतिवादी के लिए दूषण और भूषण हैं।

❇ वादी ने जो प्रमाण का प्रयोग किया, प्रतिवादी ने उसमें दोष दे दिया और वादी यदि उन दोषों का परिहार कर देता है तो वह वादी के लिए साधन होगा और प्रतिवादी के लिए दूषण होगा। अर्थात् अपना पक्ष सिद्ध कर लेने पर वादी की जीत होगी।

❇ इसके विपरीत यदि वादी ने प्रमाणाभास प्रस्तुत कर दिया और प्रतिवादी ने उसमें दूषण लगा दिया तब वादी उस दोष का परिहार नहीं कर पाया तो प्रतिवादी के लिए भूषण बन जाता है।

❇ ग्रन्थ के अन्त में यह सूत्र देने का अभिप्राय यह है कि वादी अपने प्रमाण की प्रस्तुति सही ढंग से करे। चित्त की व्याकुलता, या मान बढ़ाई में आकर यदि पक्ष की प्रस्तुति गलत हो गई तो यही गलती प्रतिवादी के लिए जीत का कारण बन जाती है।

❇ यह वाद-प्रतिवाद शतरंज के खेल की रह है। उल्टी चाल चलने पर जीतने वाला खिलाड़ी भी हार जाता है।

अन्य संभावना

"सम्भवदन्यद् विचारणीयम्" ॥74॥

अन्वयार्थ :-

संभवत्	=	संभव हुई
अन्यत्	=	अन्य [नय निक्षेपादि] बातें
विचारणीयम्	=	विचारणीय हैं।

Meaning :-

Other (Varieties) which exist, are to be understood by reasoning (from other works.)

सूत्रार्थ :-

वस्तुतत्त्व की सिद्धि के लिए संभव अन्य नय-निक्षेपादि भी विचारणीय है।

❇ अन्य नय, निक्षेप आदि के प्रयोजन की संभावना होने पर उन्हें तत्त्वार्थसूत्र आदि की टीका ग्रन्थों से समझ लें।

अन्तिम भावना

"परीक्षामुख मादर्शं, हेयोपादेयतत्त्वयोः।

संविदे मादृशो बालः, परीक्षादक्षवद् व्यधाम।"

अन्वयार्थ :-

हेयोपदेय-तत्त्वयोः	=	हेय, उपादेय तत्त्वों के
संविदे	=	ज्ञान के लिए
परीक्षामुखम्	=	परीक्षामुख रूपी
आदर्शम्	=	दर्पण को
मादृशः	=	मुझ सदृश
बालः	=	बालक ने [अज्ञानी ने]
परीक्षादक्षवत्	=	परीक्षा में कुशल के समान
व्यधाम्	=	रचा/ कहा है

Meaning :-

I having little knowledge (like a child) have written as one who is conversant with Pariksa, (this work) Pariksamukham (resembling) a mirror for understanding of realities to be accepted or discarded.

सूत्रार्थ :-

छोड़ने योग्य और ग्रहण करने योग्य तत्त्व के ज्ञान के लिए दर्पण के समान इस परीक्षामुखग्रन्थ को मुझ सदृश बालक ने परीक्षा में निपुण पुरुष के समान रचा है।

❖ यह परीक्षा मुख ग्रन्थ हेय-उपादेय तत्त्वों को जानने के लिए दर्पण के समान है।

❖ आचार्य देव यहाँ पर स्वयं को भी बालक बताकर अपनी लघुता प्रदर्शित करते हैं।

❖ जैसे परीक्षा में कुशल विद्वान पुरुष अपने प्रारब्ध कार्य को पूर्ण करता है उसी प्रकार मैंने भी यह ग्रन्थ पूर्ण करके अपने कर्तव्य का निर्वाह किया है।

षष्ठ परिच्छेद का सारांश

इस अध्याय में 74 सूत्र हैं। पिछले 5 अध्यायों में प्रमाण के स्वरूप आदि का वर्णन किया था। उसके विपरीत मान्यता को इस अध्याय में बताया है। विपरीत स्वरूप को ही आभास कहते हैं। मंगलाचरण में ही यह संकल्प किया था कि प्रमाण और प्रमाणाभास दोनों का वर्णन इस ग्रन्थ में करेंगे। उसी प्रमाणाभास का वर्णन इस अध्याय में है। इसको और स्पष्ट समझने के लिए आभासों का चार्ट देखें।

卐

आभास

- प्रमाणस्वरूपाभास (सूत्र 2–5)
- प्रमाण भेदाभास
  - प्रत्यक्षाभास (सूत्र 6)
  - परोक्षाभास (सूत्र 7)
    - स्मरणाभास (सूत्र 8)
    - प्रत्यभिज्ञानाभास (सूत्र 9)
    - तर्काभास (सूत्र 10)
    - अनुमानाभास (सूत्र 11)
      - पक्षाभास (सूत्र 12)
        - अनिष्ट (सूत्र 13)
        - बाधित (सूत्र 15)
          - प्रत्यक्ष (सूत्र 16)
          - अनुमान (सूत्र 17)
          - आगम (सूत्र 18)
          - लोकवचन (सूत्र 19)
          - स्ववचन (सूत्र 20)
      - हेत्वाभास (सूत्र 21)
        - असिद्ध (सूत्र 22)
          - स्वरूप (सूत्र 23)
          - संदिग्ध (सूत्र 25)
        - विरुद्ध (सूत्र 29)
        - अनैकान्तिक (सूत्र 30)
          - निश्चयवृत्ति (सूत्र 31)
          - शंकितवृत्ति (सूत्र 33)
        - अकिञ्चित्कर (सूत्र 35)
      - दृष्टान्ताभास (सूत्र 40)
        - अन्वय
          - साध्य
          - साधन
          - उभय
        - व्यतिरेक
          - साध्य
          - साधन
          - उभय
      - बालप्रयोगाभास (सूत्र 46)
    - आगमाभास (सूत्र 51)
- संख्याभास (सूत्र 55)
- विषयाभास (सूत्र 61)
- फलाभास (सूत्र 66)

संस्कृत टीकाएँ :-

* लिङ्गशीलपाहुड (नन्दिनीटीका का सानुवाद)
* समाधितन्त्र (आर्हतभाष्य सानुवाद)
* पुरुषार्थसिद्धयुपाय (मङ्गलाटीका)
* आत्मानुशासन (स्वस्ति टीका)
* बारसाणुवेक्खा (कादम्बिनी टीका)
* प्रश्नोत्तररत्नमालिका (प्रश्नोत्तर टीका)

अनूदित कृतियाँ :-

* सत्कर्म पञ्जिका
* दश भक्ति टीका
* प्रवचनसार (सा.भा.टी.)
* कथा कोश
* परीक्षामुख (सरलार्थ)

मौलिक कृतियाँ :-

* दार्शनिक प्रतिक्रमण
* श्रायस पथ
* सम्राट चन्द्रगुप्त मौर्य
* स्तुति पथ
* आलेख पथ
* अन्तर्गूंज
* युग द्रष्टा
* लहर पर लहर (क्षणिका संग्रह)
* बेटा
* तित्थयर भावणा (प्राकृत)

पद्यानुवाद :-

* तत्त्वार्थ सूत्र
* कल्याणमंदिर स्तोत्र
* पुरुषार्थसिद्धियुपाय
* प्रश्नोत्तर रत्नमालिका

संकलन :-

* संवाद
* A Talk

मुनि श्री प्रणम्यसागरजी महाराज

पूर्व नाम	:	ब्र. सर्वेश जी
पिता-माता	:	श्री वीरेन्द्रकुमारजी जैन, श्रीमती सरितादेवी जैन
जन्म	:	13.09.1975, भाद्रपद शुक्ल अष्टमी भोगाँव, जिला - मैनपुरी (उ.प्र.)
वर्तमान में	:	सिरसागंज (फिरोजाबाद)(उ.प्र.)
शिक्षा	:	बी. एस. सी.
गृहत्याग	:	09.08.1994
क्षुल्लक दीक्षा	:	09.08.1997, नेमावर
ऐलक दीक्षा	:	05.01.1998, नेमावर
मुनि दीक्षा	:	11.02.1998, माघसुदी 15, बुधवार, मुक्तागिरीजी
दीक्षा गुरु	:	आचार्य श्री विद्यासागरजी महाराज